साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक-11, मई-जून 2017

सम्पादक

सुभाष चंद्र

सम्पादन सहयोग

जयपाल, कृष्ण कुमार, अमन वाशिष्ठ, अरुण कैहरबा, अविनाश सैनी

सलाहकार

प्रो. टी. आर. कुंडू , ओम सिंह अशफाक, परमानंद शास्त्री, सुरेन्द्रपाल सिंह

प्रबंध एवं प्रसार

विपुला, सुनील, इकबाल, विकास साल्याण, ब्रजपाल

सहयोग राशि

व्यक्तिगत :	एक वर्ष 200 रुपए	तीन वर्ष 500 रुपए	
संस्था :	एक वर्ष 400 रुपए,	तीन वर्ष 1 हजार रुपए	
आजीवन :	पांच हजार रुपए	संरक्षक :	दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए

बैंक खाता : देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र

खाता संख्या : 50297128780, IFS Code: ALLA0211940

ई-मेल : haryanades@gmail.com

WEB : desharyana.co

ISSN 2454-6879

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118

मो. : 94164-82156

स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

इस बार

सांस्कृतिक ऊर्जा पैदा करने में अपनी भूमिका की तलाश

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं कायल,
गर आंख ही से न टपका तो वो लहू क्या है

संस्कृति स्टेज आइटम का पर्याय नहीं है,बल्कि किसी समाज व व्यक्ति के जीवन-मूल्यों और जिंदगी जीने के तौर तरीकों में गहरे से रची-बसी होती है। मानव के श्रम और सृजनशीलता से ही मानवता और मानवीय संस्कृति पैदा हुई है। सृजनशीलता और सांस्कृतिक कर्म मनुष्य की ताकत के अजस्र स्रोत हैं। शासक वर्ग मनुष्य की सृजनशीलता और सांस्कृतिक कर्म को कुंद करने के अनेक उपक्रम निरंतर करता रहता है। उसे भली-भांति मालूम है कि सृजनशील और सांस्कृतिक तौर पर मजबूत समाज को हांकना और निर्विघ्न सवारी करना मुमकिन नहीं। इसीलिए अपसंस्कृति को स्थापित करने में वह अपने हजारों मुंह और भुजाओं के साथ निरंतर सक्रिय रहता है। सृजनशीलता व सांस्कृतिक कर्म को कुंद करने की प्रक्रिया असल में लोगों को निहत्था करने और सत्ता पर निर्भर बनाने की बृहत्तर परियोजना का हिस्सा है।

सचेतन समाज को सत्ता के लिए आसानी से अपने इशारों पर नचाना कतई संभव नहीं। इसीलिए सर्वसत्तावादिओं का पहला निशाना स्वतंत्र विचारों का निर्माण और प्रोत्साहित करने वाली संस्थाएं और व्यक्ति होते हैं। पूरी दुनिया में स्वतंत्र विचारकों, लेखकों-संस्कृतिकर्मियों पर हमले और दमन इसी का हिस्सा हैं।

दरअसल किसी समाज अथवा देश में सतह पर दिखाई दे रहे राजनीतिक या सामाजिक संकट की जड़ें सांस्कृतिक संकट में होती हैं इसे सांस्कृतिक सक्रियता से ही समझा और सुलझाया जा सकता है। सृजक समाज की आत्मा को आकार देने वाला शिल्पी है। इसके लिए जनता से प्रेम और उसके दुख तकलीफों के अहसास जरूरी है। सिर्फ सत्ता के प्रति घोर क्षोभ, आक्रोश व घृणा से असरकारी सृजन संभव नहीं, बल्कि वह प्रलाप मात्र बनकर रह जाता है।

जनता से जुड़े और जनता में विश्वास रखने वाले सृजन-कर्म में निराशा कभी स्थायी भाव नहीं हो सकता। जनता की जिजीविषा और संघर्ष ऐसे सृजन-कर्म में निरंतर आशा का संचार करते हैं। जनता भी उसी सृजन को सिर-आंखों पर बिठाती है, जो उसके जीवन-संघर्षों की आवाज बनता है। शब्दों के लटके-झटके और जादूभरी-चमत्कारिकता के बल पर दरबारी-आज्ञाकारी-पुरस्कारी और बाजारी सृजन कभी भी जनता की आंखों का तारा नहीं हो सकता।

हर समाज का सृजन विशिष्ट होता है और इसी से उसकी पहचान बनती है। बार बार अनुभव हो रहा है कि हरियाणा के साहित्य, कला, रंगमंच व सिनेमा को सृजन-जगत में आदर से नहीं देखा जाता। किसी क्षेत्र के बारे में रूढ़ धारणा से वहां के महत्वपूर्ण सृजन और सृजक भी अनदेखे होने लगते हैं।

हरियाणा के सृजन के बारे में भी कुछ-कुछ इसी तरह का हो रहा है। हरियाणा संस्कृति और सृजन को नं. वन मानने वाले आत्ममुग्ध हरियाणावादी एक अति पर हैं, तो अति के दूसरे छोर पर सबकुछ नकारने वाले भी हैं। दोनों ही स्थितियों में सृजन के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव है।

हरियाणा के बारे में अक्सर कहा जाता है कि यहां साहित्यिक-सांस्कृतिक समृद्ध परंपराएं नहीं हैं लेकिन फरीद, सूरदास, हाली पानीपती और बालमुकुंद गुप्त जैसे साहित्यकारों का संबंध हरियाणा से ही है। पड़ताल करने की महती आवश्यकता है कि इस परंपरा से हमारा जीवंत संपर्क-संबंध क्यों नहीं बना। यह हमारी चेतना का हिस्सा क्यों नहीं बनी।

सृजन-उत्सव, संगोष्ठियां और सम्मेलन सृजनकर्मियों को मिल-बैठकर समाज को समझने व एक दूसरे के अनुभवों से सीखने का अवसर प्रदान करते हैं। हरियाणा सृजन उत्सव (25 व 26 फरवरी

2017, कुरुक्षेत्र) को आयोजित करने में देसहरियाणा की समस्त टीम इस सोच से सक्रिय थी कि हरियाणा के साहित्य, रंगमंच, मीडिया, फिल्म, ललित कलाओं आदि सभी विधाओं में कार्यरत सृजनकर्मी परस्पर विचार-विमर्श करें और एक-दूसरे से सीखें।

लेखकों-संस्कृतिकर्मियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं व नागरिकों ने जिस तरह इस सृजन-उत्सव में रूचि ली और सहयोग किया उससे स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक जड़ता की स्थिति से उबरने की भारी कसमसाहट है। सृजन उत्सव के बाद आ रही प्रतिक्रियाएं और भी आशाजनक और उत्साहवर्धक हैं। यह उत्सव पूरी तरह जन सहयोग से हुआ, इसमें कोई सरकारी सहायता या व्यापारिक-स्पोंसरशिप नहीं थी और न यह नीरस औपचारिकताओं, आडम्बरों-पाखण्डों के बोझ से ही दबा था। न मुख्य अतिथियों-कथित गणमान्यों का अतिरिक्त महिमागान और स्तुति-पाठ हुआ, बल्कि पूरा समय विचार-विमर्श पर ही खर्च हुआ। सृजनकर्मियों ने इसमें अपने ही खर्चे पर शिरकत की। बहुत से लोगों ने भविष्य में भी ऐसे कार्यक्रम आयोजित करने और हर तरह का सहयोग देने की इच्छा जताई है यही हमारी वास्तविक पूंजी है। इसी के सहारे देसहरियाणा की टीम ने भविष्य में ऐसे कार्यक्रमों को करने का संकल्प लिया है। इसमें विविधता व नवीनता बनाए रखना चुनौतीपूर्ण जरूर रहेगा।

हरियाणा सृजन उत्सव में पांच सौ से अधिक लोगों ने भागीदारी की। सृजन के विभिन्न पहलुओं पर दो दिन विमर्श हुआ। सभी सत्रों में बातचीत बहुत महत्वपूर्ण थी, इसलिए देसहरियाणा की टीम ने निर्णय लिया कि इस बातचीत को लिपिबद्ध किया जाए और देसहरियाणा के पाठकों तक पहुंचाया जाए। लिपिबद्ध करने में अरुण कैहरबा, गुंजन कैहरबा, विकास साल्याण, डिम्पल सैनी, रुपांशु घई ने कड़ी मेहनत की और इसकी पहुंच आप तक संभव हो पाई है।

सृजन उत्सव का उद्घाटन प्रख्यात समीक्षक बजरंग बिहारी तिवारी और समापन कथाकार व नाटककार असगर वजाहत ने किया। हरियाणा का साहित्य: सृजन और पठन-पाठन, मीडिया: सत्ता, बाजार व जन सरोकार, हरियाणा में फिल्में और फिल्मों में हरियाणा, हरियाणा का रंगमंच: परिदृश्य और संभावनाएं, हरियाणा में ललित कलाएं: चुनौतियां और संभावनाए विषयों पर संवाद हुए। लेखक से संवाद हुआ तथा साहित्यकारों का परस्पर संवाद हुआ।

कवि सम्मेलन में हिंदी, हरियाणवी, पंजाबी भाषा के चालीस से अधिक नवोदित, युवा व प्रतिष्ठित कवियों ने कविताएं पढ़ी। नाटकों की प्रस्तुतियां हुई। 'आजाद परिंदे', 'त्यागी आर्ट ग्रुप', 'उमंग स्कूल गन्नौर', 'जतन नाट्य केंद्र' रोहतक ने नाटिकाएं प्रस्तुत की।

सांस्कृतिक संध्या में विनोद सहगल ने हाली पानीपती की कविता 'चुप की दाद' तथा गालिब की गजलों का गायन किया। सुरेश भाणा, गीता राजथल तथा रामधारी खटकड़ ने रागनियों का गायन किया। जन नाट्य मंच, कुरुक्षेत्र ने हाली की कविता 'हुब्बे वतन', कबीर, रैदास तथा तारा पांचाल, के गीत गाए। फिल्म अभिनेता तथा रंगकर्मी यशपाल शर्मा ने विभिन्न कवियों के अंदाज में कविताएं सुनाई।

राजीव सान्याल के नेतृत्व में कला यात्रा निकाली गई जिसमें पचासों कलाकार पूरी ऊर्जा के साथ शामिल रहे। पुस्तक प्रदर्शनी व चित्र प्रदर्शनी लगी।

इस अंक में

सृजन उत्सव में हुए विचार-विमर्श के अलावा पंजाबी के प्रवासी लेखक हरजीत अटवाल की कहानी 'मेहरबान', महिला सफाई कामगार पर रमेश पुहाल की कहानी 'मेहतरानी', सुरेखा सुजाता का आलेख, कौशल पंवार तथा जयपाल की कविताएं हैं। विशिष्ट रचनाकार के तौर पर ओमप्रकाश करूणेश की कविताएं। नवोदित कवियों राजीव कौशिक व शर्मीला की कविताएं भी हैं। उर्दू के प्रसिद्ध लेखक नासिर काजमी पर हैदर अली का लेख तथा विरासत में गरीबदास की कविता है। दीपक राविश तथा अमरजीत सैनी का स्कूली शिक्षा पर विचारोत्तेजक लेख है। लोकधारा में लोककथा के अलावा जय भारद्वाज तरावड़ी तथा रामफल गौड़ की गजलें तथा राजेंद्र सिंह की कविता है।

अंक आपके हाथों में है। आशा है पसंद आएगा। आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतजार है।

पुनश्च : सांस्कृतिक ऊर्जा पैदा करने में अपनी भूमिका निभाने के लिए देसहरियाणा पत्रिका द्वारा कई उपक्रम शुरु किए जा रहे हैं। उल्लेखनीय है कि इंटरनेट से जुड़े युवाओं तक पहुंच बनाने के लिए देसहरियाणा की टीम एक वेबसाइट बना रही है जिसमें पत्रिका के अलावा हरियाणा से संबंधित साहित्य रखा जाएगा ताकि वह सबके लिए उपलब्ध हो। साहित्यिक-सांस्कृतिक-सामाजिक-शैक्षिक विषयों पर उपयोगी सामग्री (विडियो के रूप में) इस वेबसाइट पर उपलब्ध रहेगी। यूटयूब पर desharyana चैनल को सब्सक्राइब करें ताकि नवीनतम सामग्री की सूचना मिलती रहे। हरियाणा सृजन उत्सव की समस्त विडियो आप इस यूटयूब पर desharyana चैनल पर देख सकते हैं।

सुभाष चंद्र

-अपील-

देस हरियाणा सामाजिक-सांस्कृतिक पत्रिका है। पूर्णत: अव्यवसायिक, अवैतनिक पत्रिका है, जिसे किसी तरह का अनुदान प्राप्त नहीं होता है। यह पूर्णत: पाठकों तथा पत्रिका सहयोगियों के संसाधनों से प्रकाशित होती है।

रचनाकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से विशेष अनुरोध है कि पाठकों को पत्रिका से जोड़ें। पत्रिका के लिए अपने शहर में बिक्री का स्थान चिन्हित करके सूचित करें, ताकि पत्रिका पहुंचाई जा सके।

रचनाकारों से निवेदन है कि अपनी रचनाएं भेजें। यूनिकोड, चाणक्य, कृतिदेव फोंट में ईमेल द्वारा सामग्री भेजें तो सुविधा होगी

पंजाबी कहानी

मेहरबान

□हरजीत अटवाल, अनु. अमित कुमार गुप्ता

आरती मुझे शीतल सिंह की दुकान पर मिली थी। शीतल सिंह, हमारा लोकल दुकानदार है। हमारे घर की सारी ग्रोसरी उसकी दुकान से ही आती है। शीतल सिंह की दुकान में काम की तलाश में कोई न कोई तो आया ही रहता है और ऐसे लोगों से वह ऊब भी जाता है और एकदम से गले से उतारने की कोशिश करता है। आरती आई, काम पूछने लगी, मैं भी पास ही खड़ा था। शीतल सिंह ने उसे मेरी तरफ इशारा करते हुए कहा,

'इस भाई साहब की बहुत वाकफियत है, इनके साथ बात करो, यह आपकी हैल्प कर सकते हैं।'

साथ ही शीतल सिंह ने मुझे भी आंख दबा दी। इससे पहले कि मैं अपने आप-आपको किसी नई स्थिति के लिए तैयार करता, आरती मुझे कहने लगी,

'सर जी, प्लीज, मुझे काम की सख्त जरूरत है, मैं दुकान, रेस्टोरेंट या किसी भी फैक्टरी में काम कर सकती हूं।'

मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा था कि क्या कहूं, शीतल सिंह बोला,

'वह केक फैक्टरी वाला शाह आपका दोस्त है और फिर चैंपियन कैश एंड कैरी वाला गिल भी, उन्हें पूछ कर देखो' यदि किसी का भला होगा तो वह आपको दुआएं देगा।'

'जी सर जी, मैं तो आपको लाख-लाख दुआएं दूंगी, एक बार काम दिलवा दो, मुझे इस समय सख्त जरूरत है, यह रही मेरी सीवी।'

फिर उसने अपनी फाईल में से कुछ पेपर निकाले और मेरे हाथ में दे दिए। मुझे अभी भी कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था। मैंने शीतल सिंह की तरफ देखा, वह मंद-मंद मुस्कुरा रहा था। मैं सीवी पढ़ने लगा। आरती गुप्ता, आयु बत्तीस साल, पांच साल का तजुर्बा दिल्ली के एक डॉक्टर के पास सर्जरी में काम करने का, दो साल का तजुर्बा नर्सरी में पढ़ाने का। लंदन में छह महीने का तजुर्बा ग्रोसरी की दुकान में काम करने का। अच्छे चाल-चलन के संबंध में रेफ्रेन्सेस दी जा सकती है। यदि काम मिलने की संभावना हो तो। नीचे उसका पता, फोन नंबर और ईमेल का पता लिखा हुआ था। मैं जानबूझ कर अधिक समय सीवी में खोया रहना चाहता था, ताकि मुझे कोई जवाब सूझ सके। आरती फिर कहने लगी,

'सर जी, प्लीज, मेरे लिए कुछ करो, आप यह सीवी अपने पास रख लें, मेरा फोन नंबर इस पर लिखा हुआ है और ईमेल भी, प्लीज़...।'

आरती के कहने में एक निवेदन भी था और आदेश भी। थी तो बेशक वह सांवले रंग की, परन्तु कसे हुए अंगों के साथ बहुत ही सुंदर लग रही थी। शीतल सिंह ने एक और तीर छोड़ते हुए कहा,

'आप ही सर जी का नंबर ले लो और इन्हें रोजाना फोन करके जॉब के बारे में पता करते रहो, यह बिज़ी लोग हैं, इन्हें याद करवाते रहना जरूरी है।'

आरती ने पैन निकाला और इंतजार करने लगी कि मैं उसे अपना फोन नंबर दूं। देखने में बेशक वह हिन्दुस्तानी लगती थी परन्तु पंजाबी बहुत बढ़िया बोल रही थी। लंदन में आए हिन्दोस्तानी पहले तो हैरान होते हैं कि यहां पंजाबियों का इतना बोलबाला क्यों है, परन्तु फिर जल्दी ही पंजाबी बोलने के आदी भी हो जाते हैं, ऐसी ही होगी आरती भी। शीतल सिंह एक बार फिर मुझ पर गरजा और आरती को कहने लगा,

'आप ऐसे करो जी, इनसे नंबर लेकर एक बार इन्हें डॉयल करके श्योर कर लो और उसे सेव कर लो।'

आरती ने ऐसे ही किया। मैंने अपना नंबर डाला, उसने मुझे डॉयल करके पक्का कर लिया और 'सर जी' के नाम से सेव करके मुझे दिखा भी दिया। मैंने आहिस्ते से कहा,

'ठीक है जी, मैं ट्राई करूंगा।'

इतनी सारी बातचीत में मैं सिर्फ इतना ही बोला था। आरती ने अपनी बात एक बार फिर दोहराई और नमस्ते कहकर चली गई। मुझे शीतल सिंह पर गुस्सा आ रहा था कि उसने ऐसा क्यों किया, परन्तु मेरे कुछ कहने से पहले ही वह बोला,

'लो जी, आप भी काम लगे। यह बेचारी कोई दुःखी आत्मा है, परसों भी आई थी। बातें ज्यादा करने वाली होने के कारण मेरी घरवाली ने मना कर दिया था, मैंने तभी सोच लिया था कि आप जरूर इसकी मदद कर सकते हो।'

'यार शीतल सिंह, मैं ऐसा नहीं हूं।'

'मैं कब कहता हूं कि आप ऐसे हो, इस उम्र में जवान लड़की का साथ किसे अच्छा नहीं लगता। भाई साहब, हम उम्र के ऐसे मोड़ पर खड़े हैं, जहां घरवालियों के हर समय सिर दर्द करते रहते हैं और इनके दर्द करते सिर हमें अच्छे भले मर्दों को निकम्मे बना देते हैं। यदि ऐसे समय में इन आरतियों-शारतियों की सेवाएं ले ली जाएं तो क्या नुक्सान है।'

'आपको भी इस सेवा की मेरे जितनी ही आवश्यकता है।'

'बिल्कुल जी, मुझे तो आपसे अधिक आवश्यकता है, परन्तु मेरी घरवाली चार परांठे खाकर सारा दिन मेरे सिर पर फुंकारती रहती है, न यह कभी छुट्टी करती है और न कभी बीमार होती है, बस हल्ला करती रहेगी कि मेरा यह दर्द करता है मेरा यह दर्द करता है और मेरे मुकाबले आप जरा आजाद पक्षी हो, उड़ान भर सकते हो।'

मैं कुछ कहने ही लगा था कि शीतल सिंह का लड़का दुकान के अंदर आ घुसा। मैंने अपना सामान खरीदा और आ गया।

लंदन में हजारों लड़के-लड़कियां ऐसे ही काम ढूंढते रहते हैं। पढ़ाई के बहाने या किसी और बहाने आते हैं और काम करने लगते हैं। वीजे की समय-सीमा समाप्त होने के बाद चोरी-छिपे रहते हैं। इस तरह वह गैर कानूनी ढंग से रहते हुए बुरी से बुरी जिंदगी व्यतीत करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। पहले तो सिर्फ लड़के ही आया करते थे और अब लड़कियां भी आने लगी हैं। एशियन लोगों का आजकल यह एक बड़ा मुद्दा बना हुआ है, मैं इसे नजदीक से

देखने की कोशिश करता रहता हूं। आरती भी इनमें से ही एक थी। उसके बारे में सोचते हुए मुझे उसके साथ हमदर्दी हो रही थी। मेरा दिल भी चाहता था कि मैं उसके लिए कोई ढूंढ दूं परन्तु मेरी कोई विशेष वाकफियत नहीं थी। शीतल सिंह ने तो उसके सामने निरी गप्प ही मार दी थी।

उस दिन आरती के बारे में कुछ सोचा, परन्तु अगले दिन भूल गया। दो दिन के बाद आरती का फोन आ गया, बोली,

'सर जी, आरती !...किया मेरा कुछ?'

'सॉरी आरती जी, अभी कुछ नहीं कर सका, कुछ दोस्तों को कह रखा है, परन्तु अभी कोई पॉजीटिव जवाब नहीं आया।'

'सर जी, मुझे आरती जी मत कहो, सिर्फ आरती हूं मैं,....प्लीज यदि हो सके तो काम ढूंढ दीजिए।'

मैंने कोशिश करने का वायदा कर लिया। एक बार तो मेरे मन में आया भी कि कह दूं कि मेरी कोई वाकफियत नहीं है, परन्तु मुझ से कहा न गया। मैं सोचने लगा कि किस के साथ आरती के लिए काम के बारे में बात की जाए। मेरे एक मित्र ग्रेवाल की दुकान थी। मैंने उसे फोन किया तो उसे आदमी की जरूरत तो थी, परन्तु कोमल-सी लड़की की नहीं, बल्कि वैनों को लादने और उतारने वाले नौजवान की जरूरत थी। एक अन्य मित्र की डबल गलेजिंग की फैक्टरी थी, वहां भी भार वाला काम ही था। वहां भी मैंने पता किया तो बात न बनी। अगले ही दिन आरती का फिर से फोन आ गया। मैंने उसे किसी पहचान वाले के रेस्टोरेंट का पता देकर भेज दिया कि कोशिश करे। वह गई भी परन्तु खाली हाथ वापिस आ गई।

मैं एक बार फिर आरती के बारे में भूल गया। कुछ दिनों के बाद उसका एसएमएस आया हुआ था। उसने अपना ईमेल पता दिया हुआ था और कुछ नहीं। मैंने उसी शाम उसे अपनी ईमेल लिखकर भेज दी और माफी मांगी कि मैं उसके लिए कुछ कर नहीं पा रहा हूं। उसने वापिस ईमेल कर दी कि कोई बात नहीं, कोशिश करते रहें। कम्प्यूटर पर बैठते ही मुझे ध्यान आया कि देखूं तो सही शायद वह फेसबुक पर हो परन्तु नहीं थी। शायद कम्प्यूटर तक उसकी अधिक पहुंच न हो। मैंने उसकी सीवी से उसका पता देखा और सोचने की कोशिश करने लगा कि यह जगह कहां हुई। इतना तो मैं समझ गया कि यह काउंसल के फ्लैटों का पता था।

अब ईमेल के द्वारा हमारी अक्सर बातचीत होने लगी। उसने मेरे परिवार के बारे में पूछा। मैंने बता दिया। फिर वह अन्य बातें करते हुए यूनिवर्सिटी में पढ़ते हुए मेरे दोनों लड़कों के बारे में तथा मेरी पत्नी का हालचाल पूछती रहती। मेरे तथा मेरी पत्नी के काम के बारे में भी सवाल करती रहती। मैंने उसके बारे में पूछा तो उसने लिखा कि उसकी कहानी जरा सी टेढ़ी है और इसे सुनने के लिए उसे मिलना होगा। फिर ऐसा हो गया कि उसकी ईमेल के बारे में उत्तेजना-सी बनी रहने लगी। कम्प्यूटर पर बैठा कई बार ईमेल खोलता कि शायद उसकी ईमेल आई हो। शीतल सिंह की बात सच निकली कि मैं काम लग गया था, एक अजीब-सा शुगल चल पड़ा था। मेरे जिस्म में भी कई ऐसी तारें घूमने लगी थी, जिन्हें मैं बहुत देर के बाद महसूस कर रहा था। मुझे शीतल सिंह की बात याद आ रही थी कि इस उम्र में पत्नियों के दर्द करते सिर हमें निकम्मे बना देते हैं। कई बार यह सब अच्छा भी लगता और कई बार अपने-आप पर गुस्सा भी आने लगता। फिर मैंने जानबूझ कर कुछ दिन ईमेल खोली ही नहीं। एक दिन मैं काम से वापिस आ रहा था तो उसका फोन आ गया। बोली,

'सर जी, आपने ईमेल का जवाब देना ही बंद कर दिया, मुझे तो आपकी ईमेल का ही बहुत सहारा है।'

'आरती जी, मैं बिज़ी था।'

'आरती जी नहीं, सिर्फ आरती।...सर जी, मुझे लगता है कि आप मेरी कहानी सुनने से डरते हो।'

'नहीं, ऐसी बात नहीं है, बता तेरे पास कब समय है, हम मिलते हैं।'

'आप बताओ, मेरे पास तो वक्त ही वक्त है, आप अपनी जॉब का और घर का देखकर।'

मैं आरती को मिलने के बारे में सोचने लगा। एक बात बढ़िया थी कि मेरी पारिवारिक जिंदगी ऐसी थी कि हम चारों सदस्य ही एक-दूसरे की बात में अधिक दखल नहीं देते थे। पत्नी सुबह होते ही अपने काम पर निकल जाती। वह हीथ्रो के नजदीक एक फैक्टरी में काम करती थी और मैं उससे विपरीत दिशा की तरफ उत्तर-पश्चिमी लंदन में काम करता था। बच्चे यूनिवर्सिटी से आते तो मित्रों को ही मिलने चले जाते। कभी-कभार हम इकट्ठे पब जाते थे और साल में दो बार लड़कों के जन्म दिन पर रेस्टारेंट जाते, नहीं तो जिंदगी अपनी साधारण सी चली जा रही थी। इसलिए आरती के साथ कहीं बार जाने का चाव होना स्वाभाविक था। हमने मिलने का दिन तय कर लिया। मैंने ईलिंग मेन रोड पर उसे फोन कर दिया, जहां से उसका फ्लैट नजदीक पड़ता था। मैंने उसे सामने से पैदल आते देखा था। कसी-सी जीन। हल्के से मेकअप तथा सांवले रंग में नयन-नक्श बहुत सुंदर लग रहे थे। उसने दूर से ही मुझे भरी-सी मुस्कुराहट दी। मैं जैसे अपने यूनिवर्सिटी के दिनों में पहुंच गया। वह नमस्ते कहकर कार का दरवाजा खोलकर मेरे साथ आ बैठी। मैंने पूछा,

'कहां जाना पसंद करोगी आरती, पब, क्लब या रेस्टोरेंट?'

'सर जी, स्टेयरिंग आपके हाथ में है और पूछ मुझे रहे हो !...कहीं भी ले चलो।'

'फिर भी कोई तो पसंद होगी।'

'मेरी पसंद आपके साथ है।'

'कितना समय है तेरे पास?'

'मेरे पास तो वक्त ही वक्त है, आप अपने बारे में सोचो, कल काम पर भी जाना होगा।'

'हां वो तो है।'

'मैंने कहा पर मुझे भी घर वापिस जाने की जल्दी नहीं थी। अक्सर मैं दोस्तों के साथ पब वगैरह चला ही जाता हूं या फिर काम पर ही कोई पार्टी वगैरह चलती रहती थी। मैंने उसे रेस्टोरेंट ले जाने का मन बना लिया। ईलिंग में ही ताजमहल नामक एक भारतीय रेस्टोरेंट था, जिसका काफी नाम था। मैं पूछने लगा,

'किसी रिश्तेदार के साथ रहती हो?'

'नहीं सर जी, नीलम के साथ रहती हूं।'

'नीलम कौन?'

'नीलम मेरी सहेली है, हम साथ पढ़ती रहीं, बहुत अच्छी है, इसने मेरी बहुत हैल्प की है, पहले जब मेरे पास जॉब थी तो मैं किराये पर रहती थी, परन्तु अब किराया नहीं दिया जाता तो नीलम बेचारी ने मुझे अपने साथ रख लिया।'

'यह तो बहुत अच्छी बात है।'

'वैसे मैं भी उसकी बच्ची संभाल लेती हूं, वह कुछ घंटे लॉन्ड्री में काम करती है, ऐसे ही मिलजुल कर गुज़ारा हो रहा है।'

'जहां आप रहते हो वह काउंसल की इस्टेट लगती है।'

'जी, नीलम को फ्लैट मिला हुआ है।'

मेरी बात का वह बहुत ही संक्षिप्त-सा जवाब दे रही थी। शायद अपने बारे बातें करना चाहती थी। जो उसने आपबीती सुनाई, उसके अनुसार वह दिल्ली के किसी क्लीनिक में काम करती थी। उसका पति किसी दफ्तर में क्लर्क लगा हुआ था। चारेक वर्ष का उसका लड़का भी था। पति के साथ काम करती किसी औरत के साथ संबंध बन जाने के कारण वह उसकी अनदेखी करने लगा था। जब आरती पिछली बार लंदन आई तो वह उस औरत को घर ही ले आया था। बस इसी बात पर तलाक हो गया। आरती बेटा पति को संभाल कर फिर आजकल आपकी बात सुनता भी कौन है?'

'आरती, सच्ची बात यह है कि मैं काम ढूंढने में तेरी अधिक सहायता नहीं कर सकता, उस दिन शीतल सिंह मेरे बारे में कुछ अधिक ही बढ़ा-चढ़ा कर बात कर गया था।'

'सर जी, जो मेरी किस्मत में जो है, मुझे मिल जाएगा, काम भी मिल जाएगा, परन्तु इस समय तो मुझे यही बहुत खुशी है कि मैं आप जैसे व्यक्ति की नजदीकी महसूस कर सकी हूं।'

मुझे आरती बहुत ही अच्छी लगने लगी। मैंने सोचा कि काम न होने के कारण किसी मुसीबत में ही न हो। इसलिए मैंने पूछा,

'आरती, और तो मैं कुछ नहीं कर

लंदन में हजारों लड़के-लड़कियां ऐसे ही काम ढूंढते रहते हैं। पढ़ाई के बहाने या किसी और बहाने आते हैं और काम करने लगते हैं। वीजे की समय-समय समाप्त होने के बाद चोरी-छिपे रहते हैं। इस तरह वह गैर कानूनी ढंग से रहते हुए बुरी से बुरी जिंदगी व्यतीत करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। पहले तो सिर्फ लड़के ही आया करते थे और अब लड़कियां भी आने लगी हैं। एशियन लोगों का आजकल यह एक बड़ा मुद्दा बना हुआ है, मैं इसे नजदीक से देखने की कोशिश करता रहता हूं।

दोबारा इंग्लैंड आ गई। उसे इंग्लैंड में अपना भविष्य सुनहरा दिखाई देने लग पड़ा था। पिछली बार वह छह महीने यहां लगा गई थी तो काम मिलते रहने के कारण उसने ठीक-ठाक कमाई कर ली थी। इस बार वह यहां पक्के तौर पर सैटल होने के मन के साथ आई थी, परन्तु अब कोई सबब नहीं बन रहा था। वीज़ा खत्म होने के बाद आजकल वह गैर कानूनी निवासी बनकर रह रही थी। उसे और तो कोई मुश्किल नहीं थी, बस काम की तलाश थी, जो मिल नहीं रहा था।

हम दो घंटे से अधिक समय तक रेस्टोरेंट में बैठे। जी-भरकर बातें की। उसने अपनी बातें कहकर मेरी भी सुनीं। उसका बात करने का ढंग भी बहुत ही बढ़िया था। वह पढ़ी-लिखी होने के कारण हर विषय पर बात कर सकती थी। मुझे उसके साथ बातें करना अच्छा लगा। इससे पहले मैंने किसी औरत के साथ इतनी नजदीकी से इतनी बातें नहीं की थी। मैंने उसे जब यह बात बताई तो वह कहने लगी,

'सर जी, मैंने भी, इंग्लैंड आकर कभी किसी के साथ ऐसे निजी बातें नहीं की, सकता, हां यदि कुछ पैसे चाहिएं तो मैं दे सकता हूं, जिससे तेरा काम चलता रहे।'

'नहीं, सर जी, ऐसी कोई एमरजेंसी नहीं है। असल में जब मैं पिछली बार आई थी तो मैं काम कर गई थी, कुछ पैसे जोड़ लिए थे और यहां अकाऊंट भी खुलवा लिया था। तभी मुझे लगता था कि मेरा हसबैंड मेरे साथ कोई गेम खेल रहा है, अब भी मैं चार महीने काम करती रही हूं, इसलिए मेरे पास पैसे हैं।'

हम रेस्टोरेंट में से उठकर चले तो उसने मेरी बांह में बांह डाल ली। इस तरह तो कभी मेरी पत्नी ने भी किया था। मुझे बहुत ही अच्छा-अच्छा लगा। रेस्टोरेंट में से निकल कर हम कार में आ बैठे। मैं अजीब किस्म का भरापन-सा महसूस कर रहा था। मैंने कार उसके ठिकाने के आगे रोकी तो मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने किसी किस्म का विरोध नहीं किया।...

मुझे घर में घुसते समय पत्नी ने देखा तो कितनी ही देर तक देखती रही, फिर कहने लगी,

'आज तो बहुत खुश लग रहे हो, रब्ब खैर करे!'

'तुम्हें देखकर खुश हूं।'

'मुझे देखकर तो सारी उम्र खुश नहीं हुए।'

'यदि आज खुश हो ही गया हूं तो तुम होने नहीं देना चाहती।'

यह कहते हुए मैं कम्पयूटर के आगे जा बैठा। मैं पासवर्ड डाल रहा था तो वह बोली,

'इस डिब्बे के साथ मगज़मारी करने से पहले रोटी खा लो।'

'रोटी नहीं मैंने खानी, पब में से काफी कुछ खा आया हूं, हां चाय बना दे।'

'पब से आकर तो आप चाय पीते नहीं, आज सुख तो है?'

मुझे एकदम से गलती का अहसास हुआ कि बियर पीने के बाद तो मैं कभी भी चाय नहीं पीता। मैंने कहा,

'आज मैंने बियर भी हिसाब से ही पी है और जरा-सा सिर भी दर्द कर रहा है।'

'सिर दबा दूं?'

'तुम भी आज अजीब-सी बातें कर रही हो, आज तक तो सिर दबाने वाली बात की नहीं तुमने।'

मैंने उसी के अंदाज में ताना मारते हुए कहा। वह जवाब दिए बिना ही रसोई में चाय बनाने के लिए चली गई। मैं आरती को ईमेल लिखने लगा। ईमेल में मैंने उसके साथ बिताए पलों को सुनहरी कहा और साथ ही उसके भविष्य के लिए शुभकामनाएं भी दीं। इसके साथ ही जल्दी ही मिलने की भूख भी प्रकट की।

उसने मेरी ईमेल का कोई जवाब नहीं दिया, क्योंकि नीलम का कम्प्यूटर, जिसका वो इस्तेमाल करती थी, खराब था, परन्तु दूसरे ही दिन उसका फोन आ गया और कितनी ही देर तक बातें करती रही। फिर रोज ही बातें होने लगी। मुलाकात का सिलसिला भी बढ़ गया। काम से वापिस आते समय मैं उसे फोन कर देता और वह आ जाती और फिर हम कितनी ही देर तक कार में बैठे बातें करते रहे। वह मेरी छोटी से छोटी बात की प्रशंसा करती तो मुझे बहुत अच्छा लगता। उसकी बातें, उसकी हंसी, बात क्या उसका सारा वजूद ही बहुत अच्छा लगता। काम पर भी और घर पर भी, हर समय मैं उसके बारे में ही सोचता रहता। मुझे लगता कि मैं एकदम से बदल गया हूं। मुझे सारी दुनिया ही सुंदर लगने लगी थी।

एक दिन मेरा बड़ा बेटा यूनिवर्सिटी से आया तो पत्नी उसे कहने लगी,

'गैरी, देखो जरा अपने डैडी की तरफ, कोई चेंज दिखाई देती है तुझे?'

गैरी ध्यानपूर्वक मेरी तरफ देखने लगा और फिर एकदम बोला,

'यश डैडी ने हेयर डाई कर लिए हैं।'

'नहीं गैरी, अकेले हेयर डाई नहीं किए, देख, इनके कपड़े देख, कितने डार्क रंग के डाले हैं, लड़कों की तरह। भार कम करने के लिए साईकिल भी चलाते हैं।'

'रीयली डैड, यू हैव लॉस्ट वेट!... कोई गर्लफ्रेंड तो नहीं मिल गई?... डैड बी केयरफुल, नो ब्रदर, नो सिस्टर!'

'गैरी, सारी उम्र तो मैंने तुम्हारी मां के साथ निकाल ली, जब टाईम था गर्लफ्रेंड तब नहीं मिली, तो अब कहां से मिल जाएगी!...तेरी मां तो ऐसे ही बातें कर रही है।'

पत्नी भड़कते हुए कहने लगी,

'फिर इतना बन-ठन कर क्यों रहने लगे हो?'

'यह तो हमने काम पर सभी दोस्तों ने मिलकर सलाह की है कि जरा बन-ठन कर रहा करें, रिटायर होने में अभी बहुत समय पड़ा है, तुम अपनी ही फिलॉस्फियों को झाड़ने बैठ जाती हो।'

'मुझे क्या, मेरी तरफ से जो मर्जी करो।'

उसने जरा-सा गुस्सा दिखाते हुए कहा। मैं भीतर से थोड़ा सा डर गया कि बसा-बसाया घर ही न उजाड़ लूं। दूसरी तरफ यह भी ख्याल आ रहा था कि बदले में आरती मिल रही थी जोकि बुरा बदल नहीं था। उसी समय अपने इस ख्याल को मैं कोसने लगा। उस दिन आरती का फोन आया तो मैंने उठाया ही नहीं। अगले दिन उसे मिला भी नहीं, परन्तु दो-एक दिन के बाद दोबारा सब पहले की तरह हो गया।...

आरती के साथ दोस्ती वाली खुशी को मैंने किसी के साथ सांझा नहीं किया। वैसे तो मैं ऐसे स्वभाव का नहीं कि कोई भेद रख सकूं परन्तु यह भेद मैंने संभाल लिया। शीतल सिंह की दुकान पर जाता, तो वह जरूर पूछता,

'भाई साहब, कभी दिल्ली वाली लड़की का फोन तो नहीं आया?'

'नहीं, आप बताओ कभी मिली हो तो।' 'न जी न, उस लड़की का तो आंख ही खराब थी। इस तरह की लड़कियां यदि आदमी को चिपट जाएं तो पीछा नहीं छोड़ती, बहुत लालची होती हैं ये। ब्लैकमेल करने लगती हैं। हमारे पड़ोस में एक गोरी ने घर तुड़वा दिया। आदमी अपनी उम्र का था, गोरी ने सोचा कि पता नहीं, कितने पैसे होंगे, जब वह पीछे हटने लगा, तो सीधा घर ही आ गई और सारा भेद खोल गई।'

'शीतल सिंह जी पहले तो आप मुझे उसके चक्कर में डाल रहे थे!'

'मैं' तो भाई साहब शुगल कर रहा था। ऐसी औरतों को तो दूर से ही सलाम अच्छी है।

वह किसी समझदार व्यक्ति की तरह बताने लगा। मैं आरती के बारे में सोच रहा था। वह ऐसी नहीं थी। इतने दिन हो गए थे, उसने कभी कोई मांग नहीं रखी थी, बल्कि मेरी तरफ से की गई पेशकश भी ठुकरा दी थी। न कभी उसने मेरे घर का पता पूछा था और न ही घर का फोन नंबर। बस इतना था कि मोबाइल में क्रेडिट न हो तो घंटी मारकर बता देती थी कि उसे फोन करूं। हां, काम ढूंढने में मदद जरूर मांगती रहती थी। फिर भी शीतल सिंह की बात परखने के लिए एक दिन मैंने कहा,

'आरती, चल तुझे कपड़ों की शॉपिंग करवा दूं।'

'नहीं सर जी, मेरे पास इतने कपड़े हैं कि कई सालों तक खत्म न हो।'

'तेरे गले में कोई गहना नहीं है, चल चेन बनवा दूं।'

'सर जी, मुझे गहनों का तो बिल्कुल भी शौंक नहीं है, मोह है तो आपकी नजदीकी का, बस, दिखाई देते रहो।'

कहते हुए वह मुझ से लिपट गई, उसकी बातचीत में किसी भी प्रकार की कोई भूख नहीं झलक रही थी। उसकी बातों में दो विषय भारी होते थे, एक काम मिलने का, तो दूसरा किसी तरह यहां सैटल होने का। एक दिन मैंने कहा,

'आरती, तू लड़का ढूंढ कर शादी क्यों नहीं करवा लेती।'

'सर जी, सच्ची बात यह है कि मेरा अभी तलाक थ्रू नहीं हुआ, वैसे तो होने ही वाला है, पर विवाह मैंने सिर्फ विवाह के लिए नहीं करवाना, कोई दिल की भी सांझ बने, किसी की कोई विशेष बात क्लिक भी करे और सर जी, विवाह का बंधन अब मुझे पसंद ही नहीं, इस मुल्क में कितनी ही औरतें अकेली रह रही हैं, मुझे बहुत अच्छी लगती हैं, मर्जी की मालिक तो होती हैं, मुझे विवाह नहीं करवाना।'

एक दिन आरती का फोन आया। वह बहुत खश थी। मैंने कारण पूछा तो बताने लगी,

'नीलम चार हफ्तों के लिए इंडिया गई हुई है।'

'इसमें खुश होने वाली कौन सी बात है?'

'उसकी छोटी-सी जॉब मुझे मिल गई है, चार हफ्तों के लिए।'

'चलो कुछ तो हुआ।'

'एक और भी बात है।'

'वह कौन-सी?'

'अब मैं आपको अपने हाथों से बने डोसे खिलाया करूंगी, आप कभी भी इस फ्लैट में आ सकते हो, चार हफ्तों के लिए अपना राज है यहां।'

अपने हाथों से बनाकर कुछ खिलाने के बारे में वह कई बार कह चुकी थी। उसके अनुसार वह डोसे बनाने में बहुत माहिर थी। उस दिन के पश्चात् वह प्रतिदिन मुझे फोन करके फ्लैट में आने का निमंत्रण देने लगी। मेरा दिल भी करता पर पता नहीं क्यों मेरे भीतर से कोई आवाज मुझे रोक देती। एक तो मुझे झिझक भी और दूसरा शायद अपनी पारिवारिक जिंदगी की फिक्र भी थी।

एक सुबह मैं काम पर जा रहा था कि मेरे भीतर एक लहर-सी उठी और मेरी कार का स्टेयरिंग ईलिंग की तरफ मुड़ गया। मैंने आरती की रिहाईशगाह के नजदीक जाकर फोन किया और पूछा,

'सोहणिये, क्या हो रहा है?'

'सर जी, इंतजार,...आपका इंतजार।...आ जाओ कि आंखें बिछाये बैठे हैं।'

'काम पर नहीं गई?'

'आप आने वाले बनो, काम से मैं छुट्टी कर लूंगी, लॉन्ड्री की मालकिन यहीं है, वह छुट्टी दे देगी, आज की बजाए कल को अधिक वक्त लगा दूंगी।'

और मैंने भी काम पर फोन करके छुट्टी कर ली।

आरती मुझे बाहें खोलकर मिली। मेरे आने का उसे इतना चाव चढ़ा कि इधर-उधर भागने-फिरने लगी। चाय बनाते हुए कहने लगी,

'हम हल्का-सा नाश्ता करते हैं, प्रोपर खाना लंच के समय तैयार करेंगे।'

'तेरी मर्जी है मेरी जान, आज स्टेयरिंग तेरे हाथ में है।'

वह छोटे-छोटे काम करते हुए साथ-साथ मन को लुभाने वाले नख़रे से भी करती जा रही थी। मैं सोच रहा था कि मैं बिना किसी तैयारी आ गया था, यह कोई अच्छी बात नहीं थी, परन्तु मेरे भीतरी वेग ने मुझे अधिक सोचने ही नहीं दिया। नाश्ते के बाद वह 'एक्सक्यूज मी' कहते हुए बाथरूम में जा घुसी। मैं उठकर फ्लैट का जायजा लेने लगा। दो कमरों का फ्लैट था। एक बैडरूम और एक बैठक। बैठक में सामान तो अधिक नहीं था परन्तु जितना भी था बहुत सलीके से सजाया हुआ था। नीलम की एक फोटो थी और कुछ फोटो उसकी बच्ची की थीं, परन्तु आदमी की कोई तस्वीर नहीं थी। आरती जल्दी ही बाथरूम से निकल आई। उसने गुलाबी रंग की नाईटी डाल रखी थी, दिलकश इत्र लगा रखा था और गहरा-सा मेकअप। उसकी आंखों में लाल डोरे थे। मेरी तरफ तीखी-सी नजर डालते हुए पूछने लगी,

'सर जी, कैसी लग रही हूं?'

'अप्सरा, इंद्र के दरबार में से आई अप्सरा!'

उसने आंखें बंद की मुंह जरा-सा ऊपर को उठाया और आहिस्ते-से बोली,

'तो मेरे इंद्र, संभाल मुझे!'...

शाम को आरती से अलविदा लेने से पहले मैंने उससे पूछा,

'नीलम का हसबैंड भी इंडिया गया है?'

'नहीं, उसका हसबैंड है ही नहीं।'

'तलाक हो गया?'

'नहीं, हसबैंड है ही नहीं।'

कहते हुए उसने बच्ची की तस्वीर उठाई और मुझे दिखाते हुए कहने लगी,

'आज नीलम जो भी है, इस बच्ची के कारण ही है।'

'वह किस तरह?'

'यदि यह लड़की न होती तो नीलम भी आज यहां न होती। नीलम का भी मेरी तरह ही वीज़ा खत्म हो गया था, वापिस लौट जाने के आर्डर भी हो चुके थे, यह तो इस बच्ची ने जन्म ले लिया, नीलम को यहां रहने की स्टे भी मिल गई और यह काउंसल ने फ्लैट भी दे दिया, सोशल सिक्युरिटी भी और बच्ची को संभालने के लिए पैसे अलग!'

'तो हसबैंड की क्या डैथ हो गइ?'

'नहीं, हसबैंड इसका है ही नहीं।'

'तो यह बच्ची?'

'यह तो आपके जैसे किसी...।'

सम्पर्क : 8528840239

हरियाणा सृजन उत्सव

अभिव्यक्ति के सम्मान की जगह नजर आती है

□मानव वशिष्ठ

25-26 फरवरी को हुआ हरियाणा सृजन उत्सव मेरे लिए यह कार्यक्रम दो वजहों से ज्यादा महत्वपूर्ण और यादगार रहा। एक तो मेरे पारिवारिक कारणों से और दूसरा साहित्य के एक विद्यार्थी होने के नाते से इस कार्यक्रम ने विशेष भूमिका निभाई।

शायद यह पहली दफा था जब हम चारों भाई बहन और मेरे पापा किसी कार्यक्रम में शामिल हो रहे थे। अलग अलग कारणों के चलते ये सम्भव नहीं था कि हम एक ही कार्यक्रम में शामिल हो सकें लेकिन हरियाणा सृजन उत्सव की विविधताओं के चलते हमें यह मौका मिला।

दूसरा साहित्य का विद्यार्थी होने के नाते तथा सामाजिक आंदोलन के कार्यकर्ता के तौर पर इस कार्यक्रम ने हरियाणा के समाज को समझने में भाषा, मीडिया और साहित्य को समझने के लिए काफी महत्वपूर्ण भूमिका मेरे सामने रखी। हरियाणा के साहित्य में रूचि बढ़ाई है इस कार्यक्रम ने बजरंग बिहारी जी के उद्घाटन वक्तव्य ने हिंदी साहित्य विशेषकर भक्तिकालीन संतों के विभिन्न उदाहरणों के साथ आज की चुनौतियों का सामना करने के लिए तर्क प्रस्तुत किए। उसके बाद संवाद की जो प्रक्रिया हर सत्र में दिखी वो अपने आप में हरियाणा में शायद पहली बार किया गया प्रयोग था। संवाद की प्रक्रिया ने कार्यक्रम को बोर नहीं होने दिया। अनिल चमड़िया जी का मीडिया पर वक्तव्य और फिर सवालों के सटीक जवाब बेहतरीन थे । हालांकि मैं मीडिया का विद्यार्थी नहीं हूं लेकिन मीडिया वाला सत्र सबसे बेहतरीन रहा। मीडिया के सामजिक पक्ष उजागर करने वाला पत्रकार, युवा संघर्षरत पत्रकार और मीडिया मैनेजमेंट करने वाले पत्रकार मंच पर स्पष्ट उजागर हो रहे थे ।

हरियाणा में लेखन का बदलता मिजाज सत्र बेहतर था। हालांकि सत्र में हुई चर्चा के दौरान मन में कुछ सवाल उठ रहे थे जिनका मुझे व्यक्तिगत तौर पर जवाब नहीं मिला लेकिन मुझे लगता है कि यही इस विषय और इस सत्र की सफलता भी है कि मुझ जैसे युवा अपने सवालों के जवाब खुद ढूंढें। प्रोफेसर सुधीर शर्मा का अध्ययन, डॉक्टर दहिया का अनुभव आधारित सृजन कमाल था। जो विशेषज्ञ थे बेहतर थे हालांकि व्यक्तिगत तौर पर मुझे लगता है कि इस सत्र के लिए विशेषज्ञ और बेहतर हो सकते थे ।

नाटक और फिल्मों के सत्र बारे यही कहूँगा कि तमाम कमियों के बावजूद ये चर्चा खुली बेहतर है। अभी तक हरियाणा में इस बारे में चर्चा ही नहीं हो रही थी। यशपाल शर्मा ने अपने वक्तव्य में फिल्मों से जुड़े कई आयामों पर बेहतर चर्चा खोली। यशपाल शर्मा का लगभग हर सत्र में प्रभावी हस्तक्षेप लोगों की रूचि बनाए हुए था। नाटक के पक्ष पर चर्चा ज्यादा बेहतर हो सकती थी अगर नाटक कलाकारों के साथ-साथ कोई इस क्षेत्र में शोध करने वाला भी विशेषज्ञ होता। नाटक के क्षेत्र में खड़ी चुनौतियों को इस सत्र ने रेखांकित करने का काम बखूबी किया।

सांस्कृतिक संध्या अभी तक फोन में रिकॉर्ड है और अक्सर विनोद सहगल की गजलें अभी भी सुनते हैं। अमित मनोज का पेंटिंग कार्नर और इलस्ट्रेशन वर्क कार्यक्रम का माहौल बनाने में सबसे ज्यादा कारगर था। पुस्तक प्रदर्शनी ने कार्यक्रम में जान डाल दी थी।

पूरे माहौल को देख साहित्य मेले जैसी अनुभूति हो रही थी जहां एक ही समय में लोग अलग अलग सहित्य कर्म से जुड़े कामों में शामिल थे। हरियाणा जैसे सांस्कृतिक उठापटक से जूझ रहे समाज के लिए यह कार्यक्रम मील का पत्थर साबित होगा। तमाम तरह के विरोधाभास वाले लोग इस कार्यक्रम में नजर आ रहे थे और मेरे ख्याल में यह इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी विशेषता और सफलता रही है। बहुत से लोग इस कार्यक्रम को एक मंच के तौर पर देख रहे हैं जहां उन्हें अपनी अभिव्यक्ति के सम्मान की जगह नजर आती है।

मेरी जानकारी में अपनी तरह का इतना विविधता भरा पहला आयोजन रहा है। हरियाणा सृजन उत्सव में नाटक, लेखन, मीडिया, फिल्म और ललित कला तमाम आयामों पर उपयोगी चर्चा रही। आयोजकों से मैं यही अपील करूँगा कि इस कार्यक्रम की निरंतरता और विविधता बनाए रखियेगा।

सम्पर्क : 9068480986

जब तक क्षोभ नहीं होगा, कविता नहीं रची जाएगी-बजरंग बिहारी तिवारी

☐प्रस्तुति-विकास साल्याण

25 व 26 फरवरी 2017 को कुरुक्षेत्र में हरियाणा सृजन उत्सव का आयोजन हुआ। इस दौरान हरियाणा के साहित्य, रंगमंच, ललित कला, मीडिया व फिल्मों समेत सृजन की समस्त विधाओं में सृजन के विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श हुआ। 'सृजन, सत्ता और समाज' विषय पर वक्तव्य के साथ प्रख्यात समीक्षक बजरंग बिहारी तिवारी ने सृजन उत्सव का उदघाटन किया। इस सत्र की अध्यक्षता प्रो. टी आर कुण्डू ने की तथा रविन्द्र गासो ने संचालन किया। बजरंग बिहारी तिवारी का वक्तव्य तथा प्रो. टी आर कुण्डू की अध्यक्षीय टिप्पणी यहां प्रस्तुत है – सं.

'**सृजन**, सत्ता और समाज' विषय की पड़ताल कई तरीके से हो सकती है। हम लोग तरह-तरह से सृजन से जुड़े हैं, परन्तु मेरा तो ज्यादातर वास्ता साहित्य से होता है। शब्द से जो सृजन होता है। सत्ता अपने तरीके से देखती है सृजन को। पाठक वर्ग अपने तरीके से देखता है। सृजक अपनी नजर से देखता है। तीनों निगाहों का एक सम्मलित रूप होता है।

अगर हम परम्परा में जाएं तो अभी तारा पांचाल का एक गीत गाया तो हम उसमें देखते हैं कि परम्परा के तत्वों को लेते हुए किस तरह एक क्रांतिकारी बात कह सकते हैं। परम्परा से कटाव को मैं उपयोगी नहीं मानता। सामग्री वहीं से लें क्योंकि वह हमारे स्मृति का, सामूहिक चित्त का हिस्सा है।

मम्मट ने विचार किया कि सृजन किसके लिए। काव्य की परिभाषा में मम्मट ने पांच-छः बातों की चर्चा की। हम यहां चार का जिक्र करेंगे। वे कहते हैं उनके अनुसार काव्य का प्रयोजन यश के लिए होता है। अमरता के लिए होता है। साहित्यकार चाहता है कि वह दैहिक रूप से न सही, लेकिन स्मृति रूप में जिए तो यश प्राप्ति के लिए काव्य सृजन होता है। उसके बाद आजीविका चलाने के लिए काव्य करना चाहता है।

मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं 'अगर आप यश की कामना करते हैं तो शब्द कैसे जुड़ेंगे' बड़ा मशहूर उनका कथन है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने बड़ी खूबसूरती से रेखांकित किया है। उनकी पंक्तियां हैं 'जोरि लाई रकत के लेई, गाढ़ी प्रीति नैन जल तै भेई।ओ मन जान कवि जस कीन्हा मकु यह रेहे जगत में चीन्हा।' खून की लेई से मैंने शब्दों को जोड़ा है आंसुओं से उनको भिगोया है। मैंने यह सोच करके कविता लिखी है जिससे मेरा चिन्ह या स्मृति बची रह जाए। स्मृति तो गायब हो जाती है, लेकिन अभी फिल्म निर्माता संजय लीला भंसाली की पिटाई कर दी। पदमावत फिर याद आया। बड़े रचनाकार ऐसे संकट के अवसरों पर याद किए जाते हैं। उनके अनुसार अगर आप यश की कामना के लिए काव्य करते हैं तो ये माद्दा होना चाहिए।

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं कायल,
गर आंख ही से न टपका तो वो लहू क्या है

तो उस लहू को आपने जोड़ना है शब्दों को।

कवियों के लिए पहले कोई जरिया था नहीं, वे राजा के दरबार में अक्सर रहा करते थे। दरबार में रहकर तो वहां मिजाज के मुताबिक लिखा जा सकता है। अर्थ प्राप्ति के लिए कवि काव्य रचता है यानी दरबारी बनकर। भारतीय काव्यशास्त्र में उसके लिए एक स्पष्ट रवैया अपनाया है कि अगर कवि दरबार में है तो उससे दिक्कत नहीं है। लिखता क्या है इससे तय होना चाहिए। अगर वह राजा की स्तुति में कविता करता है तो उसे हम कवि का दर्जा नहीं देंगे। उसे

हम चारण कहेंगे, यानी जो सत्ता के पक्ष में लिखे, उसको चारण-भाट कहा जाएगा। बात दरबारी कवि होने की नहीं है बात दरबार में रहकर लिखता क्या है। इस पर निर्भर करता है।

मलिक मुहम्मद जायसी के अनुसार अगर कवि लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए काव्य लिखता है तो वह बावला है। क्योंकि सरस्वती की साधना करने वाले के पास लक्ष्मी कैसे आ सकती है। अगर आप अपनी वाणी को, अपनी लेखनी को, सृजन को गिरवी रखेंगे, तभी आपके पास लक्ष्मी आएगी। तभी आप धनाढ्य होंगे, कवि तो धनाढ्य हो नहीं सकता।

बहुत बाद के दक्षिण भारत के एक संस्कृत के कवि हैं उन्होंने कहा है जो भी चाटुकार कवि होते हैं, वह अपने आश्रयदाता को गलत हरकत को सही कहते रहते हैं। इसलिए उनको शुद्ध कवि की कोटि में नहीं रखा गया। जनता के चित में ऐसे कवि कोई जगह नहीं पाते। एक जमाने में होती है चर्चा, फिर कोई नहीं पूछता, लेकिन जो सत्ता से बाहर रहे उनकी अपने समय में तूती बोलती थी और आज भी जनता के बीच हैं। दरबारी कवि हुए गंग। गंग कवि की खूब पूछ रही लेकिन ज्यों ही सत्ता गई गंग कवि की प्रतिष्ठा कम हो गई। वे असली निर्णायक जनता होती है। इसलिए मम्मट लिखते हैं सृजक एक काम और करता है, व्यवहारविद् बनाने के लिए लिखता है। यह भी दरबारीपन का हिस्सा है। राजा ने अपने मूर्ख बेटों को समझदार बनाने के लिए बुला लिया विष्णु शर्मा को। पंचतंत्र लिखे जाने की कहानी ये है।

ओरछा नरेश के दरबार में नर्तकी थी और उनकी प्रेयसी भी थी। उन्होंने लगा दिया केशवदास को कि इस पर लिखो। उन्होंने लिखी 'रसिकप्रिया'। ज्ञान के मामले में केशवदास तुलसीदास से ज्यादा पढ़े लिखे थे। दोनों ने रामकथा लिखी। तुलसी ने 'रामचरितमानस' और केशवदास ने 'रामचंद्रिका'। केशवदास की रामचंद्रिका तो संस्कृत पिंगल शास्त्र का अजायबघर है, परन्तु जनता उन्हें न तब मानती थी न अब मानती है। केशवदास के लिए ये पहेली थी कि मैं तुलसी से ज्यादा पढ़ा-लिखा विद्वान, दरबार में इज्जत है, घर का नौकर भी संस्कृत बोलता है विद्वान है, परन्तु फिर भी मेरी प्रतिष्ठा तुलसी से कम है। जनता क्यों चाहती है तुलसीदास को।

तुलसी ने दो कसौटी दी, जिनको यहां याद करना उचित होगा। दो शर्तें होती हैं, जिसके कारण आप जनता के बीच में होते हैं। एक तो यह कि आपका लिखा हुआ लोगों को समझ में आए। दूसरा यह कि आपका चरित्र बेदाग हो। लिखने वाला कई बार बहुत अच्छा लिखता है परन्तु अंदरखाने उसके हाथ कहीं ओर रहते हैं। कहीं ओर से उसे मिलती है स्पोंसरशिप। जनता सब जानती है कि किसको कहां से धन मिल रहा है। 'सरल कवित कीरत विमत तबै आदर सुजान' ये दो शर्तें कोई पूरी करता है तो वह जनता के दिल में उतरता है, प्रतिष्ठा पाता है।

प्रतिष्ठा भी बड़ी खतरनाक चीज है। तुलसी कहते हैं प्रतिष्ठा पाप है। कहते हैं प्रतिष्ठा लग जाए तो उठना-बैठना खाना-पीना मुश्किल हो जाता है। प्रतिष्ठा आप पा लेते हो तो आपके दस दुश्मन ऐसे ही तैयार हो जाते हैं। 'मांगि मधुकरि खात जे सोवत गोड पसार। पाप प्रतिष्ठा लगि रही ताते बाढै रार।' जायसी के अनुसार तीन कामनाएं बहुत खतरनाक होती हैं। 'सुत, वित्त लोभ व लोक ऐषणा तीनि।' तीन कामनाएं ऐसी होती हैं जो आपकी मति को मलिन कर देती हैं।

कई बार लोग कहते हैं तुलसीदास लोकवादी थे या कबीर लोकवादी थे। लोक में जो कुछ है, आप उसके पक्ष में खड़े होकर अनालोचनात्मक ढंग से स्पोर्ट करेंगे ऐसा नहीं होता। जो जनता के कवि होते हैं, वे जनता के उतने ही कटु आलोचक होते हैं। अगर आप लोकवादी हुए तो आप लोगों की शर्तों पर चलने लगते हैं फिर आप नया कुछ दे नहीं पाते। आप लोक के बीच से हों पर लोकवादी न हों।

मम्मट कहते हैं 'शिवेतरक्षये। जो भी शिवेतर है (कल्याण से इतर) उसकी क्षति के लिए कविता होती है, जिसे आजकल-पोलिटिकल पोएट्री कहते हैं। इसके लिए यह जरूरी है कि कल्याण किस में यह पता हो। कल्याणकारी का पता होगा तभी अकल्याणकारी के खिलाफ लिखा जाएगा। यह है जनता के दृष्टिकोण से साहित्य की रचना करना।

भारतीय काव्यशास्त्र अधिकांश कश्मीर में रचा गया है। जो शिव है, दो दर्शन हैं भारत में एक तो केरल से आया अद्वैतवाद जिसे राहुल सांकृत्यायन ने कहा 'मुंह में राम, बगल में छुरी'। अद्वैतवाद भी है और वर्ण व्यवस्था भी। जब ब्रह्म और जीव में कोई फर्क नहीं है तो वर्ण-व्यवस्था कहां से आ गई। लेकिन कश्मीर के शिवाद्वयवाद में कोई फर्क नहीं है उसमें सब बराबर हैं। सरकार जनता के हितों के विरूद्ध भूमि-अधिग्रहण, शिक्षा-बजट में कटौती आदि निर्णय कर रही हैं। अगर सत्ता शिवेतर कर रही है, अकल्याणकारी का साथ दे रही है तो कवि का कर्म है उसके विरोध के लिए लिखे। आज की भाषा में इसे क्रांतिकारी कविता कहा जाएगा।

अभिनव गुप्त के अनुसार कविता क्षोभ से पैदा होती है। जब तक क्षोभ नहीं होगा, कविता नहीं रची जाएगी। उसके बिना तो वह चारण-भाट वाला मामला होगा। कविता नहीं लिखी जाएगी। पूरे दुनिया की बेहतर कविता क्षोभ के द्वारा ही पैदा हुई है। आप देखिए संत-रविदास को, कबीर को तुलसीदास को पूरा मध्यकाल हमारा है, वह क्षोभ वाला है। जो प्रगतिवाद है, पूरा क्षोभ वाला है, उसके बाद का साहित्य है, उस पर हम फिर बात करेंगे। लेकिन सब तरह का क्षोभ एक जैसा नहीं होता। क्षोभ शब्द जिसको अवधी वाले कहते हैं- तुलसीदास के यहां यह बात खासतौर पर यह शब्द बार-बार आता है जिनके यहां सचमुच में क्षोभ है कबीर या संत रविदास इन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल नहीं किया। ये सचेत रूप से लिख रहे हैं जैसे कि ये जो बात कही ब्रेख्त ने। मुझे लगता है कि जो मैं बात कह रहा हूं उस बात को बहुत ही अच्छे तरीके से और एक वाक्य में कह दिया। बड़े रचनाकार का यही काम होता है कि वह महाकाव्य को छोटे से वाक्य में कह देते हैं।

क्षोभ का संबंध सौंदर्य से भी होता

कविता क्षोभ से पैदा होती है। जब तक क्षोभ नहीं होगा, कविता नहीं रची जाएगी। उसके बिना तो वह चारण-भाट वाला मामला होगा। कविता नहीं लिखी जाएगी। पूरे दुनिया की बेहतर कविता क्षोभ के द्वारा ही पैदा हुई है। आप देखिए संत-रविदास को, कबीर को तुलसीदास को पूरा मध्यकाल हमारा है, वह क्षोभ वाला है। जो प्रगतिवाद है, पूरा क्षोभ वाला है,

है। आप कुछ सुंदर देखते हैं तो आपके अंदर कुछ क्षोभ पैदा होता है, सौंदर्य क्षोभ पैदा करता है, राम देखते हैं सीता को और उनके भीतर क्षोभ पैदा होता है। 'जास बिलोकी अलौकिक शोभा। सहज पुनित मोर मन क्षोभा।' एक राम का क्षोभ है, सीता का भी एक क्षोभ है। दोनों का क्षोभ एक नहीं है, पंक्तियां दी गई है – 'नखशिख देख राम की शोभा पिता का प्रण मन क्षोभा'। पिता का प्रण याद आता है और सीता के मन में क्षोभ पैदा होता है। पितृसत्ता कैसे अपनी मर्जी से अपना जीवन बिताने में बाधा बनती है। एक स्त्री के जीवन को कैसे अपने नियंत्रण में रखती है।

तुलसीदास को जो एक तरह से स्त्रीवादी कवि नहीं थे। कोई वर्ण–विरोधी कवि भी नहीं थे। लेकिन कवि तो थे। कविता क्षोभ से पैदा हो रही थी। फिर से लिखा– 'निके निरख नयन भर शोभा। पिता पन सुमिर बहुरि क्षोभा।' अच्छे से आंख भर देखा। और पिता का प्रण याद आया। मैं चाहूं तो चाहकर भी इससे शादी नहीं कर सकती। जो धनुष तोड़ेगा, उससे शादी करनी पड़ेगी। फिर से क्षोभ पैदा होता है। ये जो क्षोभ है, बार–बार रेखांकित क्यों होता है, वजह क्या है, वजह यही है ये जो सत्ता के तमाम रूप हैं, ये जो जाति की सत्ता है, पितृसत्ता हो चाहे वो राजसत्ता हो। कैसे कवि टकराता है।

अंततः धनुष तोड़ा, जब जाकर शादी हुई, अपनी मर्जी से तो वह चुनाव हो नहीं सकता था। इसलिए तुलसीदास उनको ले गए, पार्वती के पास ले गए। ये जो सारे प्रसंग हैं, ये वाल्मीकि के यहां नहीं हैं। जो अन्य रामकथा लिखते हैं, उनके यहां नहीं हैं। ये ठेठ इनका सृजन है। पार्वती की यह खासियत है कि 'बरूंअ शम्भु नत रहुंअ कंवारी' ये पार्वती की पहचान है। मैं शादी करूंगी तो शिव से या कुंवारी रह जाऊंगी। आपको पता ही है, उसके बाद उसने अपना घर ही छोड़ दिया, बाहर जाकर रहने लगी, ताकि मर्जी से अपनी पसंद के आदमी से शादी हो जाए यानी शिव से। तो उनके पास ले जाते सीता को। तय तो उसने कर लिया है कि उसकी शादी हो राम से। पार्वती का सबको पता है कि पार्वती रास्ता बना चुकी है। उन्होंने अपनी मर्जी से शादी की थी शिव से, वहां पर जाने के बाद जो प्रार्थना करती है, मुझे लगता है एक पंक्ति मूल्यवान है, जो हमें लगता है यहां याद कर लेनी चाहिए। वो कहती है कि ''तुम तो भव–भव विभव पराभाव कारण। विश्व विमोहन सरबस बिहारिन।'

तुम विश्व की सृजनकर्त्ता, पालनकर्त्ता हो, लेकिन अतीव सुंदरी और फिर भी अपनी मर्जी से चलती–फिरती हो। चलने–फिरने के लिए तुम स्वतंत्र हो, ये जो कामना है–'कत विधि सृष्टि नारि जग माही। पराधीन सपनेहु सुख नांही।' ये पंक्ति दो बार कही गई। एक बार जब सीता की विदाई हुई थी, दूसरा तब जब पार्वती की विदाई हो रही थी। यानी जो पराधीनता है ये स्त्री के जीवन का सच है इससे टकराते हुए जो सीता की इच्छा है सुंदर और फिर स्वाधीनता।

आजकल आप जानते हैं वैश्वीकरण के दौर में पिछले 20–30 साल में विश्व सुंदरियों का जखीरा खड़ा कर दिया। जिस दिन ये सुंदरियां विश्व सुंदरी बन जाती

जब राजा प्रजा को दुखी करता है, राज्य अकल्याणकारी बन जाता है। वैसे ही एक कवि का दायित्व बढ़ जाता है। सृजक का दायित्व बढ़ जाता है फिर उसको उसकी क्षति के लिए लिखना पड़ता है और वही सबसे अधिक खतरा होता है। भाषा और सत्ता के बीच बड़ा गहरा सबंध है सत्ता भाषा का बड़ी चतुराई से उपयोग करती है। सम्मोहन जो रचा जाता है, वो भाषा में रचा जाता है।

हैं, उस दिन उनको कितने सारे एग्रीमेंट साईन करने पड़ते हैं कि ये पाऊडर, क्रीम, कंगन आदि का प्रयोग करना है और विज्ञापन करने हैं। अगले दस साल वे चैन की सांस नहीं ले सकती। इतने सारे अनुबंध होते हैं, स्वयं की स्वतंत्रता उस दिन खत्म हो जाती है, लेकिन उनको लगता है ये तो आजादी है। आजादी को सैलीब्रेट करना चाहिए। जबकि होता उसका उल्टा है। ये इनसलेवमैंट का दूसरा तरीका होता है, ये कार्पोरेट कल्चर का एक नमूना है।

एक क्षोभ और भी है मध्यकाल का। वो क्षोभ जो भूख से पैदा हुआ है। ऊंच–नीच कर्म उसमें सबसे ज्यादा कविता लिखी है भूख पर। उसमें फिर नाम आता है तुलसीदास का। 'ऊंचे–नीचे कर्म धर्म–अधर्म करी। पेट को पचत बेचत बेटा बेटकी' पेट खाली है। काला हांडी में क्या हुआ, आज तक पिछले दस साल से क्या हो रहा है वहां पर। काली हांडी का सच तो सारे देश का सच हो गया है। इतनी सारी भुखमरी फैली है। जो नया शोध आया है कि सबसे अधिक भुखमरी गुजरात में है। गुजरात के विकास के मॉडल का सच है। ऊना कांड उस चादर को हटाने का बन गया है सबब कि उस विकास माडल के भीतर क्या कुछ हो रहा है। उस समाज के भीतर कितनी हिंसा पनप रही है।

संत रविदास कहते हैं कि 'ऐसा चाहूं राज मैं मिले सबन को अन्न।' अन्न मुहैया कराना पारलौकिक सत्ता का काम नहीं है, राजसत्ता का काम है। जिसे जनता का साहित्य कहते हैं उसमें आप देखेंगे कि सबसे अधिक गुस्सा राजा पर है। जो सबसे पारंपरिक कवि हैं तुलसीदास उनका जिक्र फिर से करता हूं। वे कहते हैं कि नरेंद्र और देवेंद्र दोनों की चाल एक ही होती है और दोनों के लिए बार–बार जिस पर जोर दिया इनको समीकृत करते हैं कुत्ते से। शायद कुत्ता सबसे बड़ी गाली होती होगी। वो बार–बार देवेंद्र के लिए कुत्ता शब्द का प्रयोग करते हैं वो कहते हैं– सूख हाड ले भाग सठ स्वान निरक मृगराज।

वो जो सिंह है, संतुष्ट और सुखी है उसको देखकर राजा डर जाते हैं, इंद्र डर जाता है, उसको लगता है कि यह मेरी गद्दी लेने की कोशिश कर रहा है। कोई भी आदमी जो संतुष्ट है जो प्रसन्न दिखता है वो राजा की बैचेनी का सबसे बड़ा कारण हो जाता है। इसलिए एक बात कहते हैं वो कि 'जाके राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी' जिस राज्य की प्रजा दुखी है, उस राज्य का राजा नरक का अधिकारी है। अब वो नरक खुद तो जाएगा नहीं, यह काम कवि का है। जनता है कि उसको नरक भेजे।

मम्मट के यहां शिवेतरक्षय है यहां वो यही है, जो प्रजा को दुखी करता है। अकल्याणकारी राज्य बन जाता है। वैसे ही एक कवि का दायित्व बढ़ जाता है। सृजक का दायित्व बढ़ जाता है फिर उसको उसकी क्षति के लिए लिखना पड़ता है और वही सबसे अधिक खतरा होता है।

भाषा और सत्ता के बीच बड़ा गहरा सबंध है। सत्ता भाषा का बड़ी चतुराई

से उपयोग करती है। सम्मोहन जो रचा जाता है, वो भाषा में रचा जाता है। जैसे सबका साथ सबका विकास। लोगों को लगता है कि सबका ही विकास होने वाला है।

मेरा तो मानना है कि क्षोभ दलित साहित्य में आकर आक्रोश बन जाता है। उस आक्रोश में वैचारिकी जुड़ी है। मध्यकाल का क्षोभ है, उसमें आईडयोलोजी नहीं है। आक्रोश के साथ एक आईडयोलोजी जुड़ी रहती है और आपके पास एक इतिहास दृष्टि होती है। समाज कैसे काम करता है वो एक समझ होती है। आप बिना आईडयोलोजी वाले क्षोभ कवि होंगे सत्ता पर कोई खरोंच नहीं डाल पायेंगे।

अगर अभी आप आक्रोश की रचना कर रह हैं, जनपक्षधर रचना कर रहे हैं तो आपको अब तक ज्ञान का विकास है उस ज्ञान के विकास को अपडेट करना होगा। उस ज्ञान के विकास से ही आप सत्ता की करतूत को समझ पाएंगे। सत्ता के जनविरोधी तंत्र को समझ पाएंगे और तभी आप उसकी क्षति के लिए कुछ लिख पाएंगे। मेरा निवेदन यह है कि सृजक के सामने ये सबसे बड़ी चुनौती है।

जहां तक यह हिन्दी साहित्य, भारतीय साहित्य का पड़ाव पहुंचा है अब सत्ता का केंद्रीकरण नहीं चाहिए, सत्ता का विसर्जन चाहिए। सत्ता कहीं न रहे, जो परिकल्पना की थी कार्ल मार्क्स ने। पूरा प्रगतिवाद है, वो परिकल्पना देता है कि सत्ता कहीं नहीं रहनी चाहिए। तमिलनाडू के दलित आंदोलन ने ये बात उठाई।

आप ये पाएंगे संतों कि यहां ये बात पहले से ही थी कि सत्ता कहीं नहीं रहनी चाहिए। राजा की जरूरत नहीं है। राजा है तो एक मुख्तयार की भूमिका में रहे, एक ट्रस्टी की भूमिका में रहे, शासक की भूमिका में न रहे। तमिल के दलित आंदोलन ने कहा – सत्ता हथियाना आसान। आपके पास संख्या बल है, तो आप सत्ता हासिल कर सकते हैं आसानी से। लेकिन इससे स्ट्रक्चर नहीं बदलेगा। स्ट्रक्चर बदलता है तो आपको सत्ता के विसर्जन की कामना करनी होती है। ऐसा लिखना चाहिए , जिससे सत्ता रहे ही न। अगर रहे तो जनता के पास रहे। सत्ता का अंत जो संतों का प्रस्ताव था। तमिल का दलित आंदोलन इस बात को रेखांकित कर रहा है कि अब सत्ता का केंद्रीयकरण नहीं, सत्ता का विसर्जन करना है।

हरियाणा सृजन उत्सव के उद्घाटन समारोह में अध्यक्षीय टिप्पणी

समाज की धड़कनों को पढ़ लेता है रचनाकार

□टी. आर. कुण्डू

आज एक ऐतिहासिक दिवस है हम एक नए अध्याय की शुरूआत करने जा रहे हैं हरियाणा सृजन उत्सव के साथ। हरियाणवी भाषा में कहते हैं कि'कहलवा तो गांम रहा है और कह मैं रहा हूं।' यानी जो काम सृजन सभा ने किया है, इसकी कमी तो सबको महसूस हो रही थी, लेकिन इन्होंने इसको कर दिखाया है, उसके लिए बधाई के पात्र हैं।

मनुष्य आदिकाल से ही सृजनशील है। उसने अपनी हालात-परिस्थितियां बदली हैं। आज हम इस सभ्यता में रह रहे हैं मनुष्य की कृति है। मनुष्य की सबसे बड़ी मौलिक व अनूठी कृति है – सामाजिक संरचना। क्योंकि समाज नहीं होता तो न कोई भाषा होती न कोई विज्ञान होता न कोई तरकीब होती। कुछ भी न होता।

समाज व्यक्तियों का घर नहीं है, समूह नहीं, ये एक संवेदनशील सामूहिकता है। जिसका एक मिजाज है, जिसकी एक अंतरात्मा है, जो हमें बुरे-भले की समझ का बोध कराते हैं। मूलत: यह एक नैतिकता में ही बसी हुई है। इसी के बलबूते हम आगे बढ़े हैं। कोई भी संरचना अंतिम नहीं है। उसके बाह्य व भीतरी समीकरण है जो बदलते रहते हैं। हर बदलाव के कुछ दबाव होते हैं। कुछ तनाव होते हैं। कुछ पीड़ाएं होती हैं। सबसे पहले इसकी आहट आप रचनाकारों को मिलती है। आपके पास संवेदनाओं का स्टेथेस्कॉप है जो समाज की धड़कनों को पढ़ लेता है। उनको समझ लेता है, उनको एक नया मीनिंग देता है। एक प्रस्पेक्टिव में बुनता है और अपनी कल्पना और एक गहरे अहसास के साथ समाज को वापिस लौटाते हैं और समाज को बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं। रचनाकार सामाजिक मूल्यों व परम्पराओं की भी पड़ताल करता है। उनके स्थान पर नए मूल्य स्थापित करता है या नए समाज की रचना करता है।

सत्ता कई बार समाज को क्षति पहुंचाती है और हरियाणा उसका जीता-जागता सबूत है। समाज में विकास के नाम पर जो बदलाव है, वो आपके सामने है। विकास मानव जीवन से जुड़ी बहुमुखी प्रक्रिया है। जिसका आर्थिक पहलू भी है, सांस्कृतिक पहलू भी है और सामाजिक पहलू भी है और सब आपस में जुड़े हैं। किसी एक की अवहेलना समस्त समाज को प्रभावित करती है। हमारी सरकारों का जोर आर्थिक पहलू पर रहा है। नतीजतन हमने अपनी अर्थव्यवस्था तो बदल ली, लेकिन सामाजिक व्यवस्था नहीं बदल पाए। आज भी जाति व्यवस्था, पितृसत्ता उतनी ही प्रबल है, जितनी कि पचास साल पहले थी।

जाति व्यवस्था, पितृसत्ता शोषण के तरीके हैं और जातीय और लैंगिक भेदभाव के स्रोत हैं। संस्कृति पर उच्च वर्ग के एकाधिकार बनाए रखने का जरिया हैं। ये महिलाओं और निम्न वर्ग के सांस्कृतिक जीवन पर अंकुश लगाते हैं, उनके रहन-सहन, खान-पान आदि सांस्कृतिक रूप पर बंधन लगाते हैं। ये सांस्कृतिक बंधन ही आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक बंधन का कारण बनते हैं।

अभी जाट आरक्षण के दौरान सामाजिक हिंसा फैली उसने हमारे समाज का ताना-बाना छिन्न-भिन्न किया। जातिगत खाईयां ज्यादा गहरी और चौड़ी हो गई हैं। हम अपने राजनीतिक आकाओं की बात सुन रहे हैं, अपनी नहीं सुन रहे। हम इकट्ठे रह रहे हैं, लेकिन मिलजुल कर नहीं रह रहे। बिगड़ती लैंगिक व्यवस्था ने हमारे हरियाणा के अंदर कुंठित कुंवारों की एक फौज हमारे सामने खड़ी कर दी है। हताशा में दूसरे प्रांतों से बहुएं ला रहे हैं। ये महिला के वस्तुकरण का एक जीता-जागता नमूना है। अपने घरों से दूर अपनी परम्पराओं से कटी हुई घर की चार दीवारों में बंद। उनकी स्थिति एक बंधुआ सेक्स वर्कर से ज्यादा नहीं है। इनका क्या होगा, इनके बच्चों का क्या होगा, क्या उनको समाज अपनाएगा। मैं चाहता हूं ये समस्याएं विमर्श का हिस्सा बनें। मैं हरियाणा सृजन सभा को शुभकानाएं देता हूं और आशा करता हूं आप यहां से नई प्रेरणा लेकर जाएंगे और नए समाज को बनाने में भूमिका निभाएंगे।

सम्पर्क-9991378352

हरियाणा का साहित्य : सृजन और पठन-पाठन

□प्रस्तुति - डिम्पल सैनी

हरियाणा सृजन उत्सव (25-26 फरवरी 2017) कुरुक्षेत्र में, हरियाणा का साहित्य : सृजन और पठन-पाठन विषय पर परिसंवाद हुआ, जिसमें हरियाणा के साहित्य सृजन और पठन-पाठन के विभिन्न बिंदुओं पर बहस हुई। इस बहस में ज्ञान प्रकाश विवेक, वीएन राय, टेकचंद तथा ब्रह्मदत्त शर्मा ने शिरकत की। इसका संचालन कृष्ण कुमार ने किया। यहां प्रस्तुत है यह बहस-सं.

कृष्ण कुमार - दो विरोधी छवियों को लेकर हरियाणा की पहचान बन रही है। हमने राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाई, लेकिन जन्म देने से पहले मारने की घटनाएं भी हरियाणा में सबसे ज्यादा हैं। ऑनर किलिंग को लेकर हरियाणा में सबसे ज्यादा केस दर्ज हैं। गोहाना और मिर्चपुर की घटनाएं हमें शर्मसार करती हैं। जातीय फूट भी रही है और जातिवाद बढ़ भी रहा है। ये हमारे समाज का सच है, क्या ये सवाल ये सच हमारी रचनाओं में उभरकर आ रहे है।

ज्ञान प्रकाश विवेक -दोस्तो सबसे पहले देस हरियाणा के विभाजन विशेषांक की बधाई देता हूं सुभाष जी को। विभाजन पर एक शेर मुझे याद आ रहा है।

एक ही पत्थर से मारे दो परिंदे वक्त ने
आग बस्ती को अता की आखों का पानी मुझे भी

हमारा समाज बहुत जटिल है और ये सब चीजें निरंतर चलती रहती हैं। हर रचनाकार जो ये सब चीजें देख रहा है। बड़ा बेचैन महसूस करता है। अपने-आप व्याकुल है। हरियाणा में अनेक रचनाकार जो निरंतर कार्यशील हैं। इस ओर अग्रसर हैं। अभी हरियाणा की कहानी पर मैंने एक किताब लिखी है, जिसमें विभिन्न विषय जैसे ऑनर किलिंग, खाप पंचायतों पर कहानियां लिखी जा रही हैं। ये सब अपने अनुभव हैं। अगर मेरा कस्बे का अनुभव है तो मैं कस्बों पे लिखूंगा, अगर किसी का शहर में है तो शहर पर लिखेगा। जो ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले युवा रचनाकार हैं, वो निरंतर इन चीजों के प्रति सचेत हैं और निरंतर लिख रहे हैं। एक द्वंद्व सा पैदा हो रहा है। निरंतर एक खलिश है कि ऐसा क्यों हो रहा है? कि ऐसा समाज क्यों है। प्रेम भाव है शाश्वत भाव है? उसे क्यों दमित किया जा रहा है।

कृष्ण कुमार : सही कहा आपने, हमारा रचनाकार लगातार समाज से जुड़ा हुआ है। गंभीर साहित्य में ये बातें उभर रही हैं। तो टेकचंद जी से मेरा सवाल है कि हमारे विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में विचार-विमर्श के लिए लगातार जगह सिमटती जा रही है। सेमिनार, संगोष्ठियां होती हैं, लेकिन ये प्रमाण पत्र, शाल और स्मृति-चिन्ह बांटने के ठौर-ठिकाने बन गए हैं। हम एक-दूसरे का ऋण उतारने में लगे हुए हैं। हमारी निजी महत्वकांक्षाएं बढ़ रही हैं। इसने हमारी सृजनशीलता पर कितना असर डाला है? हम आपसे जानना चाहेंगे।

टेकचंद : देखिए एक शब्द है एकता और उसके साथ दूसरा शब्द है एकरूपता। एकता का मतलब है विभिन्न तरह के विचार विभिन्न तरह के लोग जैसे हम हाथ की मुट्ठी को कहते हैं। सब उंगलियां अलग-अलग हैं पर एक जगह बन जाती है। अपनी विविधता के कारण तो वो एकता है, लेकिन जब हम एक जैसे की तरफ बढ़ते हैं तो वो एकरूपता है। मेरे जैसे रंग, मेरे जैसा नाम, मेरे जैसा धर्म, मेरे जैसे विचार, मेरे जैसी जाति, मेरे जैसी बोली, जब सब कुछ अपने जैसा करने लग जाएंगे, तो वो एकरूपता है और एकरूपता कभी सुखदायी नहीं होती। कभी सुहाई नहीं होती। अगर एक ही धर्म, जाति और एक ही जैसे विचार के आधार पर चलें तो पड़ौसी मुल्क हमारी भाषा के आधार पर बन चुका है बंग्लादेश, हालत

आप देख लें। एक देश बन चुका है धर्म के आधार पर। हमें सिर्फ विविधता को अपनाना पड़ेगा। हम जिस धरती पर रह रहे हैं वो विविधता से भरी हुई है। धरती भी अलग-अलग तरह की, लोग भी अलग-अलग तरह के, विचार भी अलग-अलग तरह के हैं। हमारी समस्या ये आ गई है कि हम अपने जैसे को महत्व दे रहे हैं। दूसरे को हम स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। ये जो असहिष्णुता की भावना है, ये उसे आगे बढ़ा रही है। हम स्वयं विभिन्न तरह की कैटेगरी बना रहे हैं, दूसरे को स्वीकार नहीं करते। ये बड़ी समस्या है।

विश्वविद्यालयों में भी यही हो रहा है कि एक विचार ज्ञाता व्यक्ति जब सत्ता के केंद्र में आता है तो दूसरे विचार वालों को खदेड़ना शुरू कर देता है। जब दूसरे विचार का व्यक्ति आता है तो यही बात उनके साथ घटित होती है। ये लगातार जारी है, जिसे साहित्यिक भाषा में उखाड़ना-पछाड़ना भी कह सकते हैं और सामान्य राजनीति में तो ये सब चल ही रहा है।

कृष्ण कुमार -हरियाणा सरकार आदर्श गांव का ख़िताब देती है पक्की सड़कें, गलियां, तालाब, चौपाल, मंदिर देखकर। पुस्तकालय, रंगशालाएं उसका हिस्सा नहीं हैं। सरकार का जोर कंक्रीट के ढांचों पर है। हमारे आंतरिक विकास के बिना बाह्य विकास कितना टिकाऊ और उपयोगी रह जाएगा? हमारे आर्थिक व सांस्कृतिक विकास के बीच एक गैप हो गया है। हमारा साहित्य इससे कैसे बच सकता है?

वीएन राय - मेरे ख्याल से तो सरकार कंक्रीट के ढांचे को भी बर्दाश्त नहीं करती। बड़ी मुश्किल से करनाल में पुस्तकालय बना था। मैं नवम्बर से रहना शुरू हुआ हूं, वहां पर, मैं जब भी उस सड़क से गुजरता हूं तो एक आंसू तो गिरता ही है आंख से। सरकारों के भरोसे न तो पुस्तकालय बनते हैं न चलते हैं। ये समझना होगा हमें, साहित्य एक ऐसी चीज है जो सबकी जरूरत है। दिल्ली में एक वर्ग है जिसको साहित्य नहीं चाहिए। वो साहित्य के beyond लोग हैं, जो इतिहास का अंत वाले जोन में पहुंच चुके हैं, लेकिन ज्यादातर लोगों में इतिहास जिंदा है। इतिहास जिंदा है इसीलिए साहित्य भी जिंदा है और उनको साहित्य की जरूरत है। अब जरूरत है साहित्य को उनके पास ले जाने की। उनकी जेब के मुताबिक साहित्य होना चाहिए और उनकी जरूरत को पूरा करने वाला होना चाहिए। अगर जरूरत का होगा तो वे उसे जरूर लेना चाहेंगे और जरूर उससे कुछ सीखना चाहेंगे। मैं ये समझता हूं कि साहित्य को लोगों तक ले जाने की जरूरत है।

ये बात भी कहना चाहता हूं कि हरियाणा में बहुत अच्छा साहित्य लिखा जा रहा है। स्वदेश दीपक और तारा पांचाल जैसी कहानियां हिन्दी में तो क्या सभी भाषाओं में देखिए आपको ऐसी कहानियां नहीं मिलेंगी। ये समय के साथ चलने वाली कहानियां हैं। एक कहानी पूरा दस्तावेज है। हम तारा पांचाल की जमीन पर बैठे हैं। एक रेलवे स्टेशन की कहानी है उनकी आपातकाल की स्थिति को दर्शाती हुई।

साहित्य चुनौती और बराबरी की भाषा पैदा करता है। जैसे चुनौती की भाषा साहित्य में आती है लोग उसे स्वीकारते जाते हैं यही साहित्य को स्वीकार करना है। हमारी भाषा में भाईचारा प्रयुक्त होता है। लेकिन History कब बनेगा। मेरा सभी विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों से सवाल है कि क्या आप ऐसी रिसर्च करवाते हो जिससे बराबरी की भाषा डवेल्प हो। कोई विश्वविद्यालय ऐसा नहीं करवाता। बराबरी से बोलकर दिखाओ। आपका मुंह दुखने लग जाएगा घंटे में ही। अपनी बीवी से, बहन से बोलकर दिखा दो, अपनी प्रेमिका से ही बोलकर दिखा दो।

ये एक साहित्य है और दूसरा वो साहित्य है जो हमें पकड़ता नहीं है। ज्ञान प्रकाश जी ने कहा कि कितनी कहानियां खाप पर, ऑनर किलिंग पर लिखी गई, परन्तु उनमें से कितनी कहानियां मेरी जिंदगी का हिस्सा भी बन गई। जब कोई खाप वाला खड़ा होकर कहे कि मैंने ये कहानी पढ़ी है और मैं बदल गया। क्या ऐसी कहानी लिखी गई है कोई? क्या कोई ऐसा गीत लिखा गया? लिखे वो जा रहे हैं पर क्या हम उन चीजों को उस रूप में ले जा पा रहे हैं या नहीं? ये चुनौती है साहित्य की?

सरकार की बात की जाए तो सरकार लाइब्रेरी भी बना देगी और उस लाईब्रेरी में वो सब कुछ होगा जो नहीं होना चाहिए। इसलिए सरकार के जरिए कोई लाइब्रेरी नहीं बनेगी। जो भी लाइब्रेरी बनेगी सरकार और जनता के सहयोग से बनेगी। उनके मतलब से ही आगे बढ़ेगी भी। और जो ये आयोजन है इसका उद्देश्य भी यही है शुक्रिया।

कृष्ण कुमार - हमारे युवा रचनाकार ब्रह्मदत्त जी से मेरा सवाल है साहित्यकार अपनी रचनाओं में हरियाणवी बोली से नहीं जुड रहा, जबकि अन्य कलाओं में हरियाणवी मुखर हो रही है। फिल्मों और नाटकों के पात्र हरियाणवी बोलते नजर आते हैं, लेकिन हमारी रचनाओं के ज्यादातर पात्र हरियाणवी से कतराते दिखाई देते हैं आपका क्या कहना है।

ब्रह्मदत्त शर्मा-जिस पात्र की हम वास्तविकता दिखाना चाहते हैं, जो पात्र की भाषा, जिस परिवेश से वो जुड़ा है। उसकी पृष्ठभूमि के लिए हमें उसी रूप में दिखाना चाहिए। जिस पृष्ठभूमि से वो आया है। लेखक राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाना चाहता है। राष्ट्रीय स्तर से जुड़ना चाहता है। सारे देश के पाठक उसे पढ़ें तो कहीं न कहीं ये बात उसके मन में रहती है।

कृष्ण कुमार-हम टेकचंद जी से जानना चाहते हैं कि हरियाणा दिल्ली से सटा हुआ है। दिल्ली में प्रतिवर्ष पुस्तक मेला लगता है और हरियाणा के लोग पुस्तक मेलों में खूब जाते हैं और आमतौर पर देखा गया है कि वे किताबें पढ़ते नहीं, सिर्फ पलटते नजर आते हैं और भी बात सामने आती है कि गांव के लोग 25 स्कॉरपियो खरीदते हैं पर क्या कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो 25 किताबें खरीदता होगा। हमारी कार की आकांक्षा किताब की आकांक्षा पर भारी पड़ती है। ऐसा क्यों है।

टेकचंद-देखिए आज के बाजार का जो उपभोक्तावाद है। उसी को ध्यान में रखते हुए सभी चीजें पेश की जा रही हैं। सब चीजें सामने लाई जा रही हैं। जहां तक पुस्तक संस्कृति की बात है, नौजवानों से वो लुप्त होती जा रही है। मुझे क्लास में पढ़ाते हुए भी बच्चों से गुजारिश करनी पड़ती है कि मोबाइल फोन साईड में रखें। मैं देख रहा हूं कि जबसे मोबाइल का चलन हुआ है, साहित्य को भी इससे खतरा हो गया है। रचनाकार कितना भी अच्छा लिख ले, कितना ही बढ़िया पात्रों की भाव-भंगिमा दिखा दे। अब जब पाठक ने वो चीज देखी ही नहीं, क्योंकि उसकी नजर तो मोबाइल स्क्रीन पर है और वो चीज सुनी नहीं, क्योंकि उसके कानों में तो मोबाइल की लीड लगी है। तो पाठक भी जज नहीं कर पाएगा कि

लेखक ने क्या लिखा है? सही लिखा है या गलत लिखा है तो वो रचनाकार तो लिख देगा, पर उसके साथ न्याय नहीं हो पाएगा।

आज का नौजवान पहचान के संकट से गुजर रहा है। पहचान उसकी बन नहीं रही और वो चीजों से खुद को परिभाषित करता है। मेरे पास किस ब्रांड का जूता, कपड़ा, गाड़ी है इससे परिभाषित करता है। मैं कितना समझदार हूं और पारिवारिक जिम्मेदारी उठाता हूं इससे नहीं। अपनी योग्यता नहीं है, चीजों से परिभाषित हो रहा है। आंतरिक क्षमताएं क्या हैं, ये हम भूल चुके हैं।

किताबों से छूटते जा रहे हैं। जब परम्परा की बात आती है। हम परंपरा को ज्यों का त्यों ग्रहण करते हैं या नकार देते हैं। जबकि हमें चाहिए परंपरा में जो अच्छा है, उसे ग्रहण करें और जो गलत है, उसे नकारें। हम बच्चों को अपने लिए नहीं कम्पनियों के लिए तैयार कर रहे हैं। हम यह मानते हैं कि साहित्य हमारी धारणाओं को, हमारे विचारों को बदलता है, इसलिए हम साहित्य नहीं पढ़ते।

आज के समय में अगर मोबाइल क्रांति है तो किताब क्रांति भी है। युवाओं में किताबों के लिए रूझान आज भी है। किताब हमारी साथी है।

हम हरियाणवी बोलते हैं पर लिखते हुए झिझकते हैं। ये सोचकर पाठक समझ भी पाएगा। अगर हम इस डर को निकाल कर जो बोल रहे हैं, वो लिखना भी शुरू कर दें तो चीजें सामान्य हो जाएंगी।

लोग कहते हैं कि लिखने का प्रभाव या बदलाव नजर नहीं आ रहा। बदलाव एक दिन में नजर नहीं आता, ये निरंतरता है। साहित्य एक साधना है, वो कभी समाप्त नहीं होती। लेखन में कोई मंजिल नहीं होती, निरंतरता होती है। लेखक लिखते रहेंगे। नाटक के जरिए फिल्मों के जरिए बदलाव तो आएगा।

कृष्ण कुमार – उदारीकरण के बाद गांव शहरों में, नगर महानगरों में तबदील होते चले गए। महानगरों की आपाधापी में परिवार के बच्चे ज्यादातर प्रभावित हुए। महानगरों में बच्चों की दुनिया कार्टून, वीडियो गेम के आसपास रच-बस गई, तो दिशाहीन कार्यक्रम और हिंसक वीडियो गेम ने बच्चों को गुमराह किया। क्या गुमराह बच्चे हमारे साहित्य के केंद्र में आए हैं।

ज्ञानप्रकाश विवेक –कैसे कह सकते हैं बच्चे गुमराह हुए हैं। बच्चों में चेतना भी आ रही है। बच्चे पढ़ भी रहे हैं, बच्चे आपस से संवाद भी करते हैं, बच्चे आपसे ऐसे सवाल करते हैं कि पसीने छूट जाते हैं।

एक नया मध्यम वर्ग पैदा हुआ है और ये आवारा पूंजी की वजह से पैदा हुआ है। हम या तो बिक रहे होते हैं या बेच रहे होते हैं। बेचना-खरीदना, जो उदारीकरण से शुरू हुआ है, इसने हमारा सब कुछ छिन्न-भिन्न कर दिया है। ये संस्कृति पाश्चात्य देशों की थी, अब हमने अपना ली है। यह हमारी कहानियों, कविताओं, गज़लों के विषय बन रहे हैं। यह विडंबनाएं प्रखर चेतना के साथ हमारे साहित्य में शामिल हो रही हैं।

कृष्ण कुमार – लेखक का घटनाओं, स्थितियों को देखने का नजरिया अलग होता है, वो अलग नजरिया क्या है?

ज्ञानप्रकाश विवेक – लेखक दूसरों की तुलना में ज्यादा संवेदनशील होता है। अगर वो आम लोगों की तरह घटनाओं को देखे तो उसमें और आम आदमी में कोई फर्क न होगा। जो उसके जीवन में, समाज में घटनाएं घटती हैं, उससे कुछ न कुछ नया निकाल लेता है।

कृष्ण कुमार – अक्सर बड़े प्रकाशक कहते हैं कि हरियाणा में साहित्य सृजन तो खूब है, लेकिन उसमें गुणवत्ता नहीं। रचनाकारों का मानना है कि बड़े प्रकाशक सिर्फ स्टार लेखक को छापना पसंद करते हैं, इसमें कितनी सच्चाई है?

वी एन राय –हिन्दी में तो यह सिस्टम है, पैसे दो किताब छप जाएगी। हमारे रचनाकारों में सेल्फ एडिटिंग नहीं है। हम जो भी लिखते हैं, उसको छपवाना चाहते हैं, उसको रिजैक्ट नहीं करना चाहते।

यह सही है कि रोजाना रचनाएं क्रांति कर रही हैं, लेकिन सवाल यह है कि आप उस रचना को और ज्यादा गहरा और ज्यादा स्थायी और ज्यादा मजबूत क्यूं नहीं बनाते। हम खुद अपनी रचनाओं को छांटना शुरू कर दें और जो बेस्ट है, वही लेकर लोगों के पास जाएं, वो किताबें जिनसे दोस्ती हो जाती है, जरूर पढ़ी जाती हैं। जिनसे दोस्ती नहीं होती, वो नहीं पढ़ी जा सकती। साहित्य पूर्ण तभी होता है, जब पढ़ा जाए। अच्छी रचना की पहचान है कि वह जितनी बार पढ़ी जाती है, जितनी बार सुनी जाती है, उतनी बार लिखी जाती है।

आज के दिन में छपना बहुत आसान है। टेक्नोलोजी बहुत बढ़ गई है, लेकिन जो एक साहित्यकार का दायित्व है, एक पाठक का दायित्व है, वो एक अलग तरीके का है।

यशपाल शर्मा –बिना निजी अनुभव के प्रमाणिक रचना नहीं कर सकते। करें तो उसमें कृत्रिमता आती है और बहुत सारे विद्वान और रचनाकारों का मानना है कि रचनाकार तो परकायागमन होता है। घोड़े पर लिखने के लिए घोड़ा बनने की आवश्यकता नहीं। तो आप अपनी रचना प्रक्रिया के माध्यम से यह बताइए कि प्रामाणिक अनुभव कितने जरूरी हैं? या भाषा और कल्पना की जादूगरी है।

टेकचंद –प्रामाणिक अनुभव तो आवश्यक है, बहुत जगह अनुभव नहीं होता, लेकिन रचना आगे बढ़ानी होती है। हमारे

पास जो डाटा उपलब्ध होते हैं, उनका जब विश्लेषण करते हैं, वो किस दिशा में जाएंगे, तो नतीजे कल्पनाशीलता के आधार पर निकालने पड़ते हैं। कई कहानियां हैं जो लिखी गई, उनको एक अंत भी दिया गया, लेकिन असल जिंदगी का पात्र वही अंत प्राप्त करता है। तो लगता है कि ठीक दिशा में सोच रहे हैं। कल्पना और रचना चलती है पर यथार्थ नहीं छूटता। निरपेक्ष होकर सोचना पड़ता है। तभी रचना निकल पाती है। रचनाकार अनुभवों को जांच कर आगे बढ़ाए ये भी जरूरी है।

ज्ञानप्रकाश विवेक– लेखक को निजी अनुभव पर लिखना चाहिए या पात्र को देखकर लिखना चाहिए। फैसला इसमें कर पाना मुश्किल है। रचना ऐसी होनी चाहिए, जिससे पाठक अपने-आप को जोड़े, चाहे पात्र काल्पनिक हो या वास्तविक।

यशपाल शर्मा–हरियाणा की ईमेज इंडिया में और बाहर के देशों में ये है कि यहां के लोग गंवार हैं। आर्मी में हमारे बड़े-बड़े दिग्गज और खेलों में अब बहुत बड़ी ईमेज है हमारी, लेकिन साहित्य में, लेखनी में और सिनेमा में कुछ खास ईमेज नहीं है।

50 सालों में एक फिल्म नहीं है, हमारे पास जो हम वर्ल्ड फेस्टीवल में लेकर जा सकें। चंद्रावल सुपरहिट हुई थी, लेकिन मैं उसको गानों के अलावा कुछ नहीं मानता। दंगल, सुल्तान, तनु वेडस मनु, हरियाणा की पृष्ठभूमि पर बनती हैं और 500 करोड़ से ऊपर का बिजनेस करती हैं। हम एक हरियाणवी ऐसी फिल्म नहीं दे पा रहे जो वर्ल्ड में घूमे या सुपरहिट हो। 50 साल कम नहीं होते। मुझे लगता है दर्शकों और पाठकों की तादाद अगर अधिक होगी तो इसमें सुधार भी आ सकता है।

50 साल से साहित्य भी चल रहा है, फिल्में भी चल रही हैं, थियेटर भी हो रहा है हरियाणा में। तो हम वो ईमेज तोड़ क्यूं नहीं पा रहे हैं। ऐसी कौन सी जड़ है, जो हम नहीं पकड़ पा रहे हैं।

ज्ञानप्रकाश विवेक –जैसे हिंदुस्तान की ईमेज सदियों से यही रही है कि सांप और सपेरों का देश है। धीरे-धीरे यह ईमेज बदल रही है। हमारे कम्प्यूटर इंजीनियरों ने अपनी धाक जमाई है, तो लोग अब हिन्दुस्तान को अलग तरीके से देखने लगे हैं।

राजीव सान्याल –हम बीस साल पहले जब नुक्कड़ करने निकले थे। जब हमें समाज का इतना ज्ञान नहीं था कि समाज में जातिवाद, धर्म की कितनी पैठ, हम ये सोचकर निकले थे कि हम सृजक हैं। लेकिन ज्ञान प्रकाश विवेक जी, ललित कार्तिकेय आदि के साहित्य से पता लगा कि सृजक तो कोई और हम तो कुछ रच रहे हैं।

अभी पीछे एक फैसला आया कि बिना किसी अनुमति के किसानों से जमीनें ले ली जाएंगी और वीएन राय साहब ने कहा-क्या कहानियों से गीत आएं? गीत आए ही नहीं, बल्कि पूरे बांगर में उन्हें गाया भी।

लोगो तैयार हो लियो
डंकल डंक मारने आया
लोगो तैयार हो लियो
डंकल डंक मारने आया।
खेतां का यू नाश करेगा
बाग उजाड़ दिए म्हारे
खेत-खेत उजाड़ दिए
जाति म्हं बांट दिए सारे
लोगो तैयार हो लियो
डंकल डंक मारने आना

दीपक स्वदेश हमें न बताते आर्मी में क्या हो रहा है तो हम वो समझ न बना पाते, जैसे अनुराधा बेनीवाल ने हरियाणा के सच को उजागर किया है।

कमलेश चौधरी- आप ये मानते हैं कि लेखन के केंद्र में आम-आदमी होता है, जो शोषित होता है, पीड़ित होता है। लेकिन सवाल ये है कि जब उस शोषित पीड़ित के पक्ष में खड़े होने की बात आती है, तो वो ये नहीं समझ पाता कि ये लेखक मेरा मित्र है वो एक छुटभैये नेता को अपना हितैषी मानता है। एक गली के पंच को हितैषी मानता है, लेकिन जो उसके लिए लड़ रहा है दिल से उसके साथ है, उस साहित्यकार को वो समझ नहीं पाता।

मैंने पढ़ा था एक फ्रांसीसी लेखक आम-आदमी की समस्या उठाते थे। सत्ता के पास पहुंची वो बात। कि लेखक जनता को जगा रहा है, तो सत्ता से यह आदेश हुआ कि यह आवाज बंद होनी चाहिए, न हुआ तो गोली मार दी जाए। तो ऐसा उसमें क्या डर जाते हैं या मार ही दिया जाए।

वीएन राय –छुटभैये नेता और पंचायत के पंचों की भूमिका, आप समाज में कम मत आंकिए। ये जो आज का सिस्टम है, ये छुटभैये नेता ही चला रहे हैं। जब एक आदमी को जरूरत पड़ती है, तो साहित्यकार की कहानी काम नहीं आती, क्योंकि हर एक की जरूरत अलग है। फ्रिज की जरूरत अलग है, किताब की जरूरत अलग है।

एक बड़ा अच्छा सवाल शर्मा जी ने किया-कि अच्छे पाठक अच्छे दर्शक क्यों नहीं हैं। मैं बहुत से देशों में घूमा तो पता लगा कि ये हरियाणा की समस्या नहीं है। ये पूरे हिन्दी साहित्य की बात है। हिन्दी साहित्य की आवाज बहुत कमजोर है। इसकी आवाज इतनी मजबूत नहीं है, जितनी मलयालम व बंगाली साहित्य की है। आप बंगाल में जाइए, महाश्वेता देवी कोई भी बात बोलती थी, तो वो बात फटाफट अखबार भी पकड़ते थे, टीवी भी और समाज भी। क्योंकि एक अलग तरीके से उस समाज का विकास हुआ है। लेकिन हिन्दी में ये बात इतनी जल्दी से ऊपर नहीं आ पाती।

मैं ये कहूंगा जो भौतिक जीवन की जरूरतें हैं और सांस्कृतिक जीवन की जरूरतें हैं, उन्हें हमें कम्पेयर नहीं करना चाहिए।

ज्ञान प्रकाश विवेक –जैसे प्रतिरोध के स्वर वहां उठते हैं, वैसे हिन्दी में क्यों नहीं उठते। मैं उसका जवाब देना चाहूंगा, दोस्तो आवाम के लिए, साधारण मनुष्य के लिए एक लेखक रचना रच रहा है। हमारी वेदना संवेदना उनके प्रति बहती रहती है। ठीक है एक पंचायत वाला वो सरपंच है वो उसका काम करवा देता है। लेकिन एक रचनाकार का वो जिम्मा नहीं है। रचनाकार का जिम्मा है एक संवेदना का जागरूक करना, प्रतिरोध के स्वर उठाना और निरंतर यही काम करना।

अभय मोर्य – जो हरियाणा को लेकर बातें हो रही हैं। जो अपने-आपको कोड़े मारे जा रहे हैं, लेकिन ये बातें देश के दूसरे भागों में भी देखने को मिलती है। दक्षिण भारत में मैंने देखा, यहां से भी गलत बाते हैं। लेकिन हम दिल्ली के नजदीक हैं तो अखबार वालों की चपेट में जल्दी आ जाते हैं। देखिए हममें कमियां हैं। भ्रूण हत्या को ठीक नहीं ठहराया जा सकता। खाप पंचायत को ठीक नहीं ठहराया जा सकता। उनके बारे में जरूर लिखना चाहिए और सशक्त तरीके से लिखना चाहिए।

अनुभव के बिना साहित्य नहीं लिखा

जा सकता, अनुभव के आधार पर जोड़ता है और नए आयाम देता है। लेखक का दृष्टिकोण जनता के हक में है या फिर अपने लिए यश, धन साथ में समाज सुधार की बात भी कर रहा है। सेंटर्ल आईडिया को जनप्रधान होना चाहिए।

राधेश्याम भारतीय - हम किसी विश्वविद्यालय में जाते हैं किसी लाईब्रेरी जाते हैं तो हमारे पास कहने को ये नहीं है कि हम लेखक हैं। हरियाणा में ऐसा कोई मंच नहीं है कि हम लेखकों की ये समस्याएं हैं और इन समस्याओं का समाधान कीजिए। आप विद्यालय में जाइए महाविद्यालय में जाएं तो वहां युवा वर्ग है, वहां पर भी पुस्तकालय में एक या दो पत्रिका पढ़ने को मिलती है। कुछ ऐसी संस्था का गठन हो, जहां लेखक इकट्ठे हो सकें। अपनी बात रख सकें और मेरा तो ये मानना है कि हरियाणा में ये पहला ऐसा प्रोग्राम है, जहां सभी साहित्यकार इकट्ठे हो रहे हैं।

कपिल भारद्वाज - आपने बताया हरियाणा साहित्य की दृष्टि से समृद्ध है। हम लिखते हैं लेकिन हम भगवान दास मोरवाल पैदा करते हैं, उपन्यासकार के रूप में, हरभगवान चावला पैदा करते हैं कथाकार के रूप में। लेकिन हमने पैदा नहीं किया कोई डा. नामवर सिंह कोई आलोचक नहीं पैदा किया। ये एक सवाल है, क्या एक कमी बनती है यहां।

वीएन राय - मैं एक शब्द में इसका उत्तर देना चाहूंगा। ठीक ही हुआ, अगर हमने कोई नामवर सिंह पैदा नहीं किया।

यशपाल शर्मा - वो साहित्य मेरे लिए गौण हो गया, छोटा हो गया जो किसी के लिए लिखा गया। या तो हम डिक्लेयर कर दें कि हम इस पार्टी के लिए लिखेंगे या इस पार्टी के खिलाफ लिखेंगे, फिर तो बात अलग।

मैं जानता हूं कि साहित्यकार का मतलब होता है। सत्ता के खिलाफ लिखना, लेकिन मेरे ख्याल से जो नाम लेकर कोई चीज बोली जाती है, इसमें चाहे मोदी हो, गांधी हो, नेहरू हो, कोई भी हो जहां नाम आ गया, तो मुझे ऐसा लगेगा कि या तो वो यहां से पैसा खा रहा है या फिर वहां से पैसा खा रहा है। चाहे बिल्कुल भी न हो ऐसा।

सम्पर्क- 7206202334

पुस्तकालय बनें और युवा उससे जुड़ें

□हरविन्द्र मलिक

हरियाणा में इस वक्त में और पिछले कुछ वर्षों से सृजन की और सृजकों की बहुत ज्यादा जरूरत है, जोकि हमारे यहां यह प्रजाति लुप्त प्रायः हैऔर खासकर साहित्यकार। मैं देखता हूं कि जैसे रोहतक है या कोई भी आसपास का शहर है, उसमें ढूंढने से भी कोई अच्छी पुस्तक की दुकान देखने को नहीं मिलती। मैं मानता हूं जो चीज लुभावन होती है, उसकी दुकान जरूर खुल जाती है। साहित्य की दुकान गायब ही हो गई। एक ऐसी पॉलिसी बने कि हर पंचायत स्तर पर लाईब्रेरी बनाने की जरूरत है। हर पंचायत में जरूरत है कि एक पुस्तकालय बने और हमारी पीढ़ी उससे जुड़े और बुजुर्ग भी जो है, वो भी वहां बैठे पढ़ें। कुछ ज्ञान लें और कुछ दें। सिर्फ ठाली बैठकर राजनीति की बात न करे।

इस वक्त में हरियाणा के राजनैतिक और सामाजिक माहौल को देखता हूं, तो एक कमाल की मानसिक गुलामी से गुजर रहा है हरियाणा। कोई चर्चा किसी भी प्रकार के साहित्य पर नहीं होती, बल्कि लख्मीचंद पर भी नहीं होती। सिर्फ और सिर्फ ये होती है कि किसकी सरकार आवेगी और किसकी जावेगी।

म्हारा चैनल संस्कृति का चैनल है। ये रूक्का सारे देश म्हं है कि म्हारा कल्चर का चैनल है। म्हारे चैनल पर गीत, रागणी, भजन, खेलों व साहित्य का चैनल है। उसमें भी अपनी राजनीति की जगह ढूंढते हैं।

मैंने देखा कि साहित्यकार भाइयों ने भी अपना एक अलग दल बना लिया कि हम दलित साहित्यकार हैं। साहित्यकार को वर्गों में बांटना भी गलत है, क्योंकि हम अपनी आईडेंटिटी के लिए वर्ग बनाते हैं। आप कुछ अच्छा काम कीजिए। आप अच्छा काम करोगे, तो जनता आपको सराहना देगी।

हम अच्छा काम करें। एक जनाब अभी बहुत अच्छा बोल रहे थे। पर उन्होंने कहा कि जहां सरस्वती होती है, वहां लक्ष्मी नहीं होती। गुलजार साहब के पास दोनों हैं। जावेद अख्तर साहब के यहां दोनों बैठी हैं। सरस्वती भी है लक्ष्मी भी है, तो ऐसी डिस्क्रेजिंग बातें न करें। आप साहित्यकार हैं तो आप समाज से जुड़िए। हमने यहां चैनल बनाया जिस पर हर तरीके का एक नया प्लेटफार्म बना रहा हूं। आप आईए आप कविता सुनाईए। आप अपना साहित्य दिखाएं। मिलजुल कर काम कीजिए। सृजन तभी अच्छा हुआ।

हमने एक नया चैनल बनाया है एंडी हरियाणा और इस एंडी में भी एक सृजन है। हम अपने शब्दों को अपना रहे हैं, क्योंकि हम ही अपने शब्दों को तवज्जो नहीं देंगे तो कौन देगा। हमने न्यूज में कार्यक्रम का नाम रखा खबर-खखाटा। खखाटा का अर्थ होता है स्पीड से। हम हरियाणा के साहित्य की बात करें तो हरियाणा के शब्दों पर ध्यान देना होगा।

अभी साहब तुलसी जी का उदाहरण बार-बार दे रहे थे तो उन कवियों की अवधी व वहां की लोकभाषा का प्रभाव था और इसी संदर्भ में हमारा हरियाणा कहीं न कहीं पीछे रहता चला जा रहा है। क्या कारण है कि हमारे पास जब भी रेफरेंस आते हैं वो लख्मी चंद जी के या उससे पहले के आते हैं।

आप साहित्य कला के क्षेत्र में हैं, साहित्य के माध्यम से चैनल से जुड़िए। आपकी रचना को हम स्क्रीन पर दिखाएंगे। दुनिया की कोई बेहतरीन कहानी हमें दीजिए, हम उसका हरियाणवी रूपांतरण करवाएंगे और चैनल पर दिखाने को तैयार हैं, ताकि हमारे बच्चों का एक्सपोजर बढ़े। हमने डिसाईड किया है कि हम ऑस्कर विनिंग मूवी भी हरियाणवी में डब करके दिखाएंगे। हमारी यही सोच है कि अपनी बोली व भाषा को दुनिया की सबसे बढ़िया चीज से जोड़कर देखें। हरियाणा का समग्र विकास तभी होगा, जब स्ट्रक्चर डिवैल्पमेंट के साथ सांस्कृतिक विकास जुड़ा हो। हम सबको मिलकर कोशिश करनी चाहिए।

मीडिया, बाजार, सत्ता और जन सरोकार

□प्रस्तुति - रूपांशु घई

***हरियाणा** सृजन उत्सव में 25 फरवरी 2017 को दूसरे सत्र का विषय रहा -मीडिया, बाजार, सत्ता और जन सरोकार। इस सत्र के परिसंवाद में लंबे समय तक हरियाणा की पत्रकारिता से जुड़े रहे तथा वर्तमान में हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में कार्यरत डा. गुरमीत सिंह, मीडिया विश्लेषक व जन मीडिया के संस्थापक अनिल चमड़िया (दिल्ली से) तथा इलेक्ट्रोनिक मीडिया में हरियाणा के युवा पत्रकार दीप कमल सहारण ने हिस्सा लिया। इस सत्र का संचालन पत्रकार धर्मवीर ने किया। इसमें मीडिया से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचारोत्तेजक बहस हुई जो यहां प्रस्तुत है - सं.*

धर्मवीर - आज हम दिनभर में 80 प्रतिशत मीडिया खाते हैं, रोटी और पानी के बाद मीडिया एक सबसे बड़ी जरूरत है हमारी। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में विचारों का स्वतंत्र प्रवाह जरूरी है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जितने भिन्न-भिन्न विचार आएंगे, वो उतनी फले-फूलेगी। मीडिया चाहे अखबार, रेडियो और सोशल मीडिया, इन सब में विचारों का स्वतंत्र प्रवाह जरूरी है।

यूरोप के संदर्भों में देखें तो सामंतवाद से पूंजीवाद के समय में और जब तकनीक समय को ले जाने की दिशा में थी, तब मीडिया ने एक सकारात्मक भूमिका निभाई है। मीडिया ने समाज की प्रगतिशील ताकतों का साथ दिया। भारतीय सेनानियों द्वारा मीडिया को एक मिशनरी की तरह शुरू किया गया। उस मीडिया ने एक अग्रणी और सराहनीय भूमिका निभाई।

आज भारत में 350 के करीब चैनल और 60,000 अखबार, पत्रिकाएं निकल रही हैं। एक लाख करोड़ से ज्यादा मीडिया का कारोबार है। मीडिया एक प्रोफेशन और इस व्यवसायिक धंधे में बहुत सी कमियां आई हैं। मीडिया में भटकाव है, बहुत से चिंतन के विषय हैं। यह जानना जरूरी है कि मीडिया की दशा और दिशा क्या है। क्या मीडिया समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है, क्या मीडिया के अंदर सभी वर्गों के विचारों और भावनाओं को उनके मुद्दों को जगह मिल पाती है?

गुरमीत सिंह जी। जनसत्ता, ट्रिब्यून जैसे जो गंभीर अखबार माने जाते हैं, यह अखबार मुनाफे के पीछे भागने वाली व्यवसायिक पत्रकारिता से अलग हैं। ऐसे गंभीर अखबारों में काम करते हुए आपने क्या महसूस किया। हरियाणा की पत्रकारिता कहां है और किस रूप में है।

गुरमीत सिंह - प्रश्न पर आने से पहले एक टिप्पणी आपने और लघुनाटिका ने मीडिया की एक भूमिका बनाई, मुझे ऐसा लगता है कि यह एक फैशन हो गया है, मीडिया का बैंड बजाने का। जैसे एक जमाने में हर चीज के लिए नेताओं को दोषी ठहराया जाता था। वैसे ही हर चीज के लिए मीडिया को दोषी ठहराए जाने की रिवायत सी चल पड़ी है।

किसी भी वर्ग की छवि बनाने में फिल्मों का बहुत बड़ा योगदान है। पुरानी फिल्मों में दाढ़ी वाला, झोले वाला पर ईमानदार, सच्चाई की राह पर चलने वाला

पत्रकार होता था। यह हकीकत बदली। आज की फिल्मों में मीडिया और पत्रकार का रूप बदला। सब ने सुना होगा। एक बहुत अच्छा किस्सा जब राजकमल झा ने मोदी जी के सामने कहा। ऐसा नहीं कि अच्छा मीडिया नहीं है। केवल खराब मीडिया शोर ज्यादा कर रहा है। किसी भी राज्य के जो चैनल हैं या अखबार हैं, वह उस राज्य की समस्याओं को जगह तो देंगे ही। किसी को खारिज कर देना, किसी का मजाक उड़ा देना बहुत आसान होता है। मीडिया के बिना जनतंत्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हरियाणा की पत्रकारिता की बात करें तो बहुत से लोग जो हरियाणा के बाहर से हैं, वह हरियाणा के हिन्दी अखबारों को संचालित कर रहे हैं। उन्हें हरियाणा के बहुत से विषयों की जानकारी नहीं है। अपना उदाहरण देते हुए मैं खुद उत्तर प्रदेश से हूं पर मेरी कर्मभूमि हरियाणा है।

इलैक्ट्रोनिक मीडिया में खाप की जगह खप सुनाई देती है, वो शब्द तक भी सही पता नहीं है और उसमें उनकी गलती नहीं है। हम लोग या हमारे राज्य के बच्चे खुद को उतना तैयार नहीं कर पाते कि वो इस चुनौती को स्वीकार करें। पंजाब में भी यह समस्या बढ़ती जा रही है। पंजाब के बहुत से अखबारों में ऐसे लोग हैं, जिन्हें पंजाब की संस्कृति का ज्ञान नहीं है। उससे परिचित नहीं है। उसके कारण मीडिया में कितना हरियाणा आता है, समझा जा सकता है। इसके बावजूद बड़े अखबार या इंग्लिश मीडिया अपना योगदान दे रहा है। आप सब जानते हैं कि जो केस हरियाणा के एक प्रमुख डेरे पर चल रहा है, वो केवल एक स्थानीय पत्रकार के साहस की वजह से चल रहा है, जिसकी हत्या भी हुई बाद में। हर जगह पर लोग अपने तरीके से कोशिश कर रहे हैं। हर समय की अपनी चुनौतियां होती हैं। आजकल बाजार का चलन बढ़ गया है। मेरा यह मानना है कि पुरानी बातों को लेकर विलाप न करें, चुनौतियों को स्वीकारें। बाजार को लोग बुरा मानते हैं, बाजार का भी प्रयोग करना सीखें। हममें अगर चुनौतियों को स्वीकार करने का साहस है तो यह बहुत ही सशक्त माध्यम है और इसका बहुत योगदान है।

धर्मवीर -दीप कमल जी, आप इलेक्ट्रोनिक मीडिया से जुड़े रहे हैं। सवाल यह है कि मीडिया शहरों की ओर अधिक ध्यान देता है। हरियाणा में फरीदाबाद और गुड़गांव के अलावा बहुत ग्रामीण क्षेत्र हैं, क्या हमारा मीडिया उनके मुद्दों और समस्याओं को सामने रख पाने में कारगर सिद्ध हुआ है?

दीप कमल -पहले तो यह कि हरियाणा के मीडिया में हरियाणा कितना है उसे दूसरे तरीके से समझा जाए। हरियाणा के मीडिया में हरियाणा के पत्रकार कितने हैं। मूल समस्या वहीं है। पिछले 10 सालों में ही हमारे मीडिया के कुछ संस्थान पत्रकार तैयार करने लगे हैं, जिसके बाद मीडिया में हमारे युवा आ रहे हैं। सन 2004 से जब हरियाणा न्यूज से मैंने शुरूआत की थी और उससे पहले दिल्ली के वाईएमसीए से शुरूआत की है। हरियाणा न्यूज में 2004 में जब मैंने काम किया तो हम दो लोग हरियाणा से थे। आज संख्या बढ़ी है, पर आज भी हरियाणा के चैनलों पर उच्च पद पर जो अधिकारी हैं, वह बाहर से हैं। वहीं से सभी दिशाएं तय होती हैं, वहीं से खबरों को प्राथमिकता मिलती है। स्थानीय चैनल में खबरों के साथ न्याय स्थानीय पत्रकार ही कर सकते हैं, क्योंकि वह उस क्षेत्र से जुड़े हैं। वहां के लोगों की भावनाओं और समस्याओं को समझते हैं।

किसी न किसी माध्यम से हम पूरा दिन मीडिया से जुड़े रहते हैं चाहते न चाहते हुए भी। मीडिया जो परोस रहा है, हमारे

विचारों में वह शामिल होता जा रहा है। हरियाणा में ज्यादा से ज्यादा हरियाणा के ही पत्रकारों के शामिल होने के लिए यह जरूरी है कि संस्थान अच्छे विद्यार्थी तैयार करे, उन्हें ट्रेनिंग दी जाए।

जो हमारा यह विषय है–मीडिया, सत्ता, बाजार और जनसरोकार, जो उसमें बाजार का जो हिस्सा है, उसके बिना हमारा काम भी नहीं चलता, उसका आधिपत्य ज्यादा हो जाएगा तो सरोकार पीछे छूट जाएगा। यह बहुत पेचीदा सी चीजें हैं, चैनल चलाना इलैक्ट्रोनिक मीडिया में आफत का काम है। उसी की वजह से बाजार के भरोसे रहना पड़ता है। उसी की वजह से जन सरोकार पीछे छूट जाता है। उसी की वजह से हरियाणा छूट जाता है। इसलिए ज्यादा से ज्यादा ऐसी खबरें दिखानी पड़ती हैं, जिससे सनसनी फैले, टीआरपी मिलें, लोग ज्यादा से ज्यादा आपके चैनल से जुड़े रहें। नेशनल मीडिया में खासतौर पर।

धर्मवीर – अनिल चमड़िया जी, क्या हमारा मीडिया अल्पसंख्यक समुदायों जिसमें पिछड़ी जाति, महिलाएं, दलित, आदिवासी से जुड़ी खबरों के साथ इंसाफ करता है?

अनिल चमड़िया – हरियाणा में इस तरह के कार्यक्रम को करना मेरे लिए सुखद आश्चर्य की बात है। बेहद प्रसन्नता की बात है और मैं समझता हूं कि आप हरियाणा में एक नई शुरूआत करने जा रहे हैं।

पहले सत्र में हरियाणा की संस्कृति को लेकर बात हुई। इस समाज की संस्कृति जितनी गहरी है, व्यापक है। इसका अंदाजा हम और आप नहीं लगा पा रहे। यहां सांस्कृतिक गतिविधियों की कमी थी। वो सांस्कृतिक गतिविधियां जो आपकी सांस्कृतिक ऊर्जा को एक बड़े सृजन में बदल जाए, यह कार्यक्रम वह करने जा रहा है।

दूसरी बात प्रश्न का उत्तर देने से पहले पूरे मीडिया की एक तस्वीर बताने की कोशिश कर रहा हूं। पहले यह बात साफ कर दी जाए कि हम यहां सिनेमा या नाटक की बात नहीं कर रहे, हम यहां अखबार या टीवी की बात कर रहे हैं और उसमें भी समाचारों की बात कर रहे हैं। यह मीडिया का छोटा सा हिस्सा है। पर बहुत प्रभावशाली हिस्सा है।

हमारे देश की एक संस्था है आरएनआई–रजिस्ट्रेशन न्यूजपेपर आफ इंडिया। हम इस संस्था के दफ्तर में रजिस्टर 1 लाख पत्र, पत्रिकाओं की बात नहीं कर रहे हैं। हम 800 टीवी चैनल की बात नहीं कर रहे हैं, हम केवल आठ–दस चैनल और आठ–दस अखबारों की बात कर रहे हैं। आपके लिए मीडिया वही है, जो आपके घर में पहुंचता है, जो आपके अनुकूल बात करते हैं, वहही आपके लिए मीडिया है।

हमारे और आपके भीतर क्रिटीकल नजरिया जो पैदा होना चाहिए, यानी कि एक खबर को लेकर अलग–अलग अखबार किस तरह से रिएक्ट कर रहे हैं। किस तरह से बातें कर रहे हैं। क्या उसका प्लेसमेंट हो रहा है। वह अंदर के पेज में है। बाहर के पेज में है। ये नजरिया हमारे अंदर विकसित ही नहीं हो पाता। हम एक पिछलग्गू की तरह काम करने लगते हैं।

अब आपका जो सवाल है कि जो समाज बड़ा हिस्सा है उस बड़े हिस्से की जगह कहां है। उसको मैं तथ्यपूर्ण तरीके से आपके सामने रख सकता हूं। हमने एक रिसर्च किया और उस रिसर्च का तरीका तैयार किया, ताकि हम ज्यादा से ज्यादा अखबारों का अध्ययन कर सकें। उसके लिए यह तरीका अपनाया। हमारे देश की संसद में बहुत सारे अखबार आते हैं, देशभर से आते हैं। तमाम भाषाओं में आते हैं। वहां पर फाईल बनती है। सभी विषयों की आदिवासी, दलित, किसान, हर विषय की फाइल में 30 से अधिक अखबारों की कतरनें थी।

अब आश्चर्य की बात है कि इन विषयों पर महीने में 1–2 से ज्यादा खबरों का औसत नहीं जाता था। यह बात पहले से चली आ रही है। हमारे अखबारों का विकास लक्षित पाठकों की वजह से हुआ है। यह बात बुरी लगती है कि हरियाणा के मीडिया में हरियणा का प्रतिनिधित्व वहीं है, पर क्या आप जानते हैं कि राष्ट्रीय मीडिया में दलित नहीं है। आदिवासी नहीं है, क्या वो बात आपको चुभती नहीं है और यह निरंतर चली आ रही है। आज जितने भी बड़े अखबार हैं, यह उन्हीं लोगों के अखबार हैं, जिन्हें हम कहने लगे जूट और सुगर प्रेस। Sugar Press। यह इसलिए कहने लगे क्योंकि सामाजिक संरचना और आर्थिक सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाला है।

गोहाना कांड या हिसार में होने वाली

घटनाओं की रिपोर्टिंग पढ़िए आप। आपको शर्म आएगी। समाज का कितना बड़ा हिस्सा – दलित, किसान, आदिवासी, सिक्ख, मुसलमान आदि इन बड़े अखबारों को अपना नहीं कहते अपने विरोधी मानते हैं। फिर भी इन अखबारों को जिंदा रखा गया है।

मीडिया पर टिप्पणी करने से बात नहीं बनेगी। मीडिया को गहराई से समझना पड़ेगा। इसके लिए एक आलोचनात्मक नजरिया होना चाहिए। 1947 में जितनी महिला पत्रकारों का योगदान था, महिला सम्पादक थी, आज उसकी आधी भी नहीं है। हमने सर्वे किया कि देश भर में मीडिया में दो प्रतिशत से भी कम महिलाओं का प्रतिनिधित्व है।

धर्मवीर – गुरमीत जी छोटे चैनल या अखबारों को बड़े चैनल या अखबार खरीद रहे और जो बिक नहीं रहे वो बंद हो गए हैं। ऐसे में छोटे चैनल या अखबारों का टिका रहना मुश्किल है? तो मीडिया कन्सट्रेशन के विचारों पर कैसे असर है?

गुरमीत सिंह –हर समय की अपनी चुनौतियां होती हैं। आज के समय में प्रौद्योगिकी के कारण नए Platorm खड़े हुए हैं। हम जानते हैं कि मीडिया एक पुल की तरह काम करता है। जनता की आवाज शासन तक पहुंचाता है। इसके लिए दूसरे माध्यम भी उपलब्ध हुए हैं और यह जरूरी नहीं कि अगर महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ेगा तो उनके लिए सहूलियत भी बढ़ेगी। जैसे एकता कपूर ने महिलाओं की छवि खराब की है। उतना किसी और ने नहीं किया। माना कि मीडिया में कुछ वर्गों का प्रतिशत कम है। पर ऐसा जरूरी नहीं कि उनकी संख्या बढ़ने से समस्याएं खत्म हो जाएंगी।

तमाम चुनौतियों, समस्याओं के बावजूद अवसर भी हैं। अगर पत्रकारों को विदेश जाकर इवेंट कवर करने का मौका मिल रहा, तो गलत क्या है। क्यूं हम पत्रकार को उसी पुरानी झोले टंगाए, दाढ़ी बढ़ाए छवि में देखना चाहते हैं। पत्रकार ने भी समय के साथ खुद को बदला है। हरियाणा में पाठक आलोचनात्मक नजरिया रखता है। अगर खिलाफ लिख दिया तो कहेगा बिक गया, अगर पक्ष में लिख दिया, तो कहेंगे खरीद लिया। ऐसा होना सही भी है, क्योंकि इसमें एकदम से प्रतिक्रिया मिलती है। समाज को भी यह देखना चाहिए। मीडिया ने आपकी लड़ाई का ठेका नहीं उठा रखा कि सारी जिम्मेवारी उसके ऊपर है। आपके ऊपर भी जिम्मेवारी है। एजेंडा सैट करना मीडिया का काम है। मीडिया के अपने दायरे, मजबूरियां, काम और समय सीमा है।

लोग कहते हैं कि मीडिया से विश्वास उठ गया। प्रतियोगिता के साथ चीजें बदली हैं, पर कहीं तो विश्वास है, जिस कारण मीडिया का अस्तित्व जिंदा है। इस संस्थान की उपयोगिता को समझना चाहिए। इससे जुड़ना चाहिए। नए प्रौद्योगिकियों से जुड़ना चाहिए। सोशल मीडिया का चलन बढ़ता जा रहा है। उसे गलत कहना सही नहीं है। हां संतुलन बना रहना चाहिए। क्या आप इनके बिना दुनिया की कल्पना कर सकते हैं। इनकी उपयोगिताओं को समझना चाहिए। हिन्दी से जुड़े तकनीकी विकास में अभी पीछे हैं। बोली जाने वाली भाषाओं में हिन्दी दूसरे, तीसरे स्थान पर है। पर इंटरनैट में हिन्दी पहली 10 भाषाओं में भी नहीं है।

धर्मवीर – दीप कमल जी सत्ता को आज का मीडिया कैसे प्रभावित कर रहा है।

दीप कमल –मीडिया के कामों पर निगरानी रखी जाती है। मॉनिट्रिंग प्रकोष्ठ हैं, जो इलैक्ट्रोनिक मीडिया के कामों पर निगरानी रखते हैं। प्रिंट मीडिया की डॉक्यूमेंटेशन और सूचीकरण दशकों से हो रही है। आज के दिन चर्चाओं का दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह है कि आपको मध्यस्थ या संतुलित रहने नहीं दिया जा रहा। इलैक्ट्रोनिक और सोशल मीडिया का दखल इतना बढ़ रहा है कि न चाहते हुए भी आपको देखना पड़ता है आप इसके साथ हैं या खिलाफ हैं।

अन्ना आंदोलन देश में हुआ। लाखों लोग वहां पहुंचे। उसमें से 80 फीसदी लोग ऐसे थे, जिन्हें जनलोकपाल के बारे में कुछ नहीं पता था। आरक्षण आंदोलन हमारे राज्य में हो रहा है। ज्यादातर लोगों को यही पता नहीं कि आरक्षण का इतिहास क्या है और इससे फायदा क्या होगा। लेकिन ललकारा दिया जाता है सरकार के खिलाफ, किसी वर्ग के खिलाफ लोग चल पड़ते हैं। जो इस सोच को बढ़ावा देते हैं मीडिया उनका हथियार बन गया है। मीडिया का दुरुपयोग किया जा रहा है।

धर्मवीर – अनिल चमड़िया जी गुजरात में पिछले साल एक घटना हुई, दस दिन तक नेशनल मीडिया में उसका कोई जिक्र नहीं था। वहां एक बहुत बड़ा आंदोलन होने के बाद नेशनल मीडिया में यह बात आती है। कहा जाता है कि उसमें सोशल मीडिया का बहुत बड़ा हाथ था और यह भी कहा जा रहा है कि सोशल मीडिया मेनस्ट्रीम मीडिया की जगह लेता जा रहा है, तो इस पर आपके विचार क्या हैं?

अनिल चमड़िया– जब प्रिंटिंग सुविधा आई, तब एक सवाल था, वो सवाल आज भी है। भले ही हम तकनीकी स्तर पर कितने चरण पार कर चुके हों। ये बुनियादी सवाल है। ये सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक ढांचे (Structure) से जुड़े सवाल हैं। हम बस घटनाओं पर चर्चा कर रहे हैं। पर नीतिगत बात पर कोई चर्चा नहीं हो रही। घटनाओं का कोई अंत नहीं है। हमारा इतिहास बताता है कि अखबारों का काम है, पहल लेना, लेकिन पिछले 20 सालों में ऐसी कौन सी घटना जिसमें अखबार ने पहल की हो। किस घोटाले को पहले अखबारों और टैलीविजन ने दिखाया।

प्रश्न हरनाम सिंह–अखबार में फोटो छपती है। इसका कितना असर पड़ता है। दैनिक ट्रिब्यून में मैंने एक हफ्ता पहले खबर देखी। उसमें एक तरफ तो यशपाल मलिक की फोटो छापी है कि जाट आरक्षण को लेकर कि हम ये कर देंगे। दूसरी तरफ मनोहर लाल खट्टर की फोटो छापी है कि उनके हाथों में जूता है। वो संदेश दे रही है कि ये जूता देखा है। वो संदेश दे रही है कि ये जनता देखा है। जाटों की तरफ यह यह एक गलत संदेश दे रही है। मुझे ये उम्मीद बिल्कुल नहीं है थी दि ट्रिब्यून से कि वो ऐसी खबर छापेंगे। तो क्या असर पड़ेगा। मैंने ईमेल भी लिखी जब हालात ऐसे हैं, तो ऐसी फोटो छापना गैर जिम्मेदाराना काम।

जितेन्द्र गोस्वामी–हमें ऐसा प्रतीत होता है। जैसे मीडिया का मालिक एक है और रिपोर्टर है वो एक अलग कैटेगरी है और मालिक करवा रहा है और रिपोर्टर की रिपोर्टिंग क्वालिटी ओ के है। मेरा प्रश्न यह है कि एसवाईएल का मुद्दा है। उसको मीडिया ने ऐसा दिखाया जैसे ये दो राज्यों की लड़ाई है, परन्तु किसी भी अखबार पत्रकार या मीडिया ने वाटर मैनेजमैंट के मुद्दे पर ये नहीं दिखाया असली मुद्दा ये है। मैं ये कहता हूं जो मीडिया में जो रिपोर्टिंग करते हैं उनकी विषय के बारे में पूरी तरह से स्टडी नहीं होती है, बहुत सतही रिपोर्टिंग होती है।

सम्पर्क : 9416574657

कहानी

मेहतरानी

□रमेश चन्द्र पुहाल, 'पानीपती'

'पैरों पड़ूँ चाची जी, सलाम।' छन्नों ने पंडिताइन का आदर किया । छन्नों दूर से ही पैरों पड़ना और सलाम चाची को बोल सकती है, पर छू नहीं सकती। छन्नों ऐसे समाज से है, जिसको उच्च जाति के लोग छूना अनुचित मानते हैं ।

कुछ जवान तथा अर्ध उम्र की ओर अग्रसर मध्यम कद-काठ वाली बेबाक और चुस्त मेहतरानी छन्नों अपने चिकने चमकते, नसवारी रंगत के चेहरे, चौड़े माथे पर लाल बिंदिया लगाए, पैने नयन नक्श, उभरे गोल-गोल गालों और सुर्ख होंठों से लाल-काले छींट की सिर पे सूती ओढ़नी के किनारे को अपने सफेद दांतों व होंठों से दबाए, अध खुला घूंघट किए और अपने ऊंचे वक्ष पर नीचा पल्लू किए, बांए ढूंगे पर ओढ़नी का सूड्डा लगा दोनों उभरे नितंबों को पल्लू से ढ़क कर, शरीर पर सूती हल्के नीले रंग का अधमैला नीचे जालीदार सफेद बॉर्डर वाला जनाना कमीज बोतल बाजू, मांसल टांगों पर दफाड़ा (महिलाओं का एक प्रकार का टांगों पर लिपटा हुआ चूड़ीदार पहनावा) लपेटे हुए, छन्नों ने अपने बाएं बगल में झाऊ की पतली कामचियों (पतली और बारीक लकड़ियां) से बना टोकरा लगाया हुआ, टोकरे में नारियल की सींकों की छोटी झाड़ू व लोहे का पंजर (सफाई कर्मचारियों का लोहे का औजार) रखे हुए तथा दूसरे दाएं हाथ में नारियल की सींकों की बनी बड़ी झाड़ू, दोनों हाथों में चार-चार रंगीन चूड़ियां तथा पैरों में काले चमड़े के मलीन स्लीपर पहने हुए आ गई ।

''ए आ गई छन्नों ।'' फिर आंगन में खेल रहे बच्चों से पंडिताइन बोली, ''राम, श्याम! जाओ, अब तुम बाहर खेलो । क्योंकि अब मेहतरानी आ गई है । वो अब गोबर उठाकर सारे में सफाई-सुथराई और झाड़ू-बुहारी करेगी, अब तुम्हारा यहां खेलना ठीक नहीं ।'' फिर पंडिताइन छन्नों से बोली, ''हां पहले तो ये बता छन्नों तू कल क्यों नहीं आई थी?'

'चाची जी, क्या बताऊं। तुम्हारे बेटे को दो दिन से बुखार चढ़ा है। बुखार ज्यादा था, मैं तो उन्हें गर्म चादर उढ़ा के वैद्य जी के पास ले कर गई थी, वैद्य जी के पास बीमारों की भीड़ थी और वैद्य जी ने भी हमें सबके बाद बुलाया बस वहां देर हो गई। इसलिए नहीं आ सकी। इन्हें आराम अब तक नहीं आया।'

'अरी छन्नों तू तो बीमार नहीं थी। तुझे तो काम न करने का जरा सा बहाना चाहिए। अच्छा अब जल्दी काम कर। भैंसों के नीचे दो दिन से गोबरे की सफाई नहीं हुई है। दो दिन का गोबर ज्यूं का त्यूं जमा पड़ा है। मक्खी-मच्छर भैंसों को काट-काट रहे हैं।' और फिर 'हां भूरा पाळी भी आ गया, वो भैंसों को ले जायेगा, तू अपना काम कर लेगी।'

'हां, घेर (पशु बाँधने का बाड़ा) के दरवाजे के सामने बाहर कुत्ते की टट्टी पड़ी है,

उसे भी साफ कर वहां पानी का छिड़काव कर दियो। आग लगे इन कुत्तों को। जहां मरजी हग देते हैं। पैर-वैर भी धंसने का डर रहता है। न जाने कहां से आ जाते हैं। इन्हें तो मौत भी नहीं आती।'

लम्बे चौड़े घेर के खुले दरवाजे के सामने छन्नों झाड़ू-बुहारी करने लगी।

आपस में झगड़ा करते, उछलते-कूदते राम और श्याम छन्नों से टकरा गये, और छन्नों धड़ाम से गिर पड़ी। दोनों बच्चे दौड़ गए और अपनी दादी को बताया कि छन्नों गिर गई ।

'हाय-हाय तुम्हारा सत्यानाश जाए निकम्मों, छू गए मेहतरन से। दोनों बच्चों को देखते ही पंडिताइन के माथे की त्यौरियां चढ़ गई ।

पंडिताइन ने, राम और श्याम के गालों पर दो-दो चाटें जड़ दिये और उन दोनों बच्चों को हाथों से पकड़ा, 'ये तो आराम से खेल भी नहीं सकते। हे राम! इनका क्या करूं पहले ही कहा था, मेहतरन आई है, बाहर खेलो । लेकिन ये नहीं मानते। सुबह ही नहलाया था, अब फिर नहलाओ, कपड़े बदलो। कुछ गरम-सरद हो गया तो! लेकिन तुम्हें क्या?

ये छोटे की बहू भी पता नहीं क्या करती रहती है। बच्चों को भी नहीं संभाल सकती, हे रब बहुएं क्या बस गजब हैं । सब कुछ मुझे ही देखना पड़ता है ' पंडिताइन बच्चों को घर के दरवाजे की तरफ जबरदस्ती ले गई ।

लम्बे चौड़े मकान में इधर-उधर देखते हुए ऊंचे स्वर में क्रोधित हो मुंह ऊपरी मंजिल की ओर करती हुई बोली, 'अरी ओ रत्ना। कहीं सुन रही है क्या....? इन दोनों को नहला कर दूसरे कपड़े पहना दे...। ये दोनों छन्नों मेहतरन से छू गए हैं।' कह कर फिर बच्चों को अन्दर भेजा, 'चलो ऊपर जाओ। जब तक मेहतरन गोबर कूड़ा-करकट को बुहार के चली न जाए तब तक तुम दोनों बाहर आए तो मार-मार कर भूस भर दूंगी।'

पंडिताइन बच्चों को अन्दर ढकेलकर दहलीज के अन्दर वाले दरवाजे की सांकल लगा, जली-भुनी छन्नों के पास आई और गुस्से में जलते भुनते हुए बोली, 'क्यों री भंगनिया! क्या तू बच्चों से बच नहीं सकती थी। आंख नहीं है क्या तेरे? चल अब जल्दी उठ और गोबर बाहर गेर, झाड़ू-बुहारी का काम कर।''

वो क्या है चाची जी... 'हां बोल, अब

क्या मेरे से चिपटेगी।' छन्नों अपने दाहिने हाथ से बायें हाथ की हथेली को कस कर पकड़े हुए ज़मीन पर बैठी हुई थी। जमीन पर खून टपक-टपक कर फैला हुआ था।

'हा...ये क्या हुआ हाथ में?' पंडिताइन के गुस्से का ज्वार एकदम कुछ ठण्डा पड़ गया। परेशानी के हल्के चिह्न चेहरे पर उभर आए ।

'चाची जी...यहां दरांती पड़ी थी। वो हाथ में लग गई।' पीड़ा से छटपटाती छन्नों संभलकर खड़ी हो गई।

पंडिताइन अन्दर गई और बाहर आकर पुरानी गली-सड़ी धोती की एक कत्तर पानी में भिगो कर दूर से छन्नों के मुंह पर फेंक दी, 'ले इसे अपने हाथ पे कस कर बांध ले। यहां सारे में झाड़ू-बुहारी तथा पानी का छिड़काव करने के बाद वैद्य जी से मल्लहम का फोया वगैरा लगवा कर पट्टी बंधवा लियो। यहां पर चिपका ये खून भी साफ करके जाइयो। कभी ऐसे ही छोड़ के चली जाए। अच्छा ...' कभी यहां मक्खियाँ भिनभिनाती रहें! पंडिताइन झुंझलाकर बुदबुदाते हुए अन्दर चली गई।

कुछ देर बाद पंडिताइन फिर बाहर आई।

'चाची जी... सलाम, जा रही हूं।' छन्नों बाहर जाते हुए बोली ।

'अच्छा ठीक है। शाम को आज की एक रोटी ले जाइयो। कल तो तू आई नहीं थी, वो कल वाली बासी रोटी भी आले से उठा ले जाना, तुम्हारे नाम की ही रोटी है। हां, पंडित जी कह रहे थे कि दो दिन से तेरा घरवाला बुधिया खेत पर नहीं आ रहा है ?'

'ओह हां।' पंडिताइन को एकदम याद आया, 'बुधिया को तो दो दिन से बुखार है।'

'हां, चाची जी।'

'मैं भी कितनी भुलक्कड़ हूं '

छन्नों हल्के से मुस्कराई ।

'अच्छा कोई बात नहीं। जैसे ही बुधिया का बुखार उतरे उसे खेत पर भेज दियो। गेहूं की फसल पक चुकी है। उसकी कटाई करनी है। फिर मरीला (गेहूँ के खेत में मरे-काले गेहूं की बालें) का कोना भी उसे ही काट कर ले आना है और हाँ, तू भी खेत चली जाइयो। दोनों आधा-आधा भार उठा लाना।

'अच्छा चाची जी।' आ जाएंगे कहते हुए छन्नों झाड़ू पंजर सहित कूड़े-कबाड़ का भरा टोकरा सिर पर उठा तथा बाएं हाथ में दूसरी झाड़ू लिए अगले घर की ओर चल दी।

सम्पर्क-98966-71690

सफाई कामगार महिलाओं की जीवन-व्यथा

□सुरेखा सुजाता

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य व स्त्री-लेखन की महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई है। यह दोनों आज सामाजिक मुद्दे बन हर लेखक की लेखनी में सजने लगे है। लेकिन दलित स्त्री के जीवन की वास्तविक और भयानक सच्चाई उजागर नहीं हो पाई।

भारतीय समाज में मनु के विधान ने समाज में स्त्री को जो स्थान दिया उससे स्त्री की स्थिति किस कदर बद से बदतर हुई इसका ज्ञान तो किसी हद तक हम सभी को है। परन्तु जब स्त्री दलित हो और उस पर सफाई कर्मचारी स्त्री तो उसका जीवन किस कदर अपमानजनक और नरक बना उसका अंदाजा लगाना मुश्किल होगा।

सफाई कामगार महिला चौतरफा शोषण का शिकार नजर आती है। एक-महिला, दूसरा- दलित, तीसरा- पितृसत्ता समाज की भुक्तभोगी, चौथा-सफाई कामगार। सफाई कामगार महिला अपमान की हर सीमा से परे होकर प्रताड़ित होती है। जिसकी एक झलक करनाल में रहने वाली सफाई कामगार महिला बिरमा के रूप में देखी जा सकती है। बातचीत के दौरान उन्होंने बताया।

''मेरा नाम बिरमा है। 40 साल सर पर मैला ढोया है, बिटिया। वो भी उस टेम जब घरों में कच्ची लेट्रिन होवे थी। गर्मी हो, सर्दी हो चाहे बारिश कोई भी मौसम हो मैंने अपने हाथों से टट्टी निकाली, टोकरा में भरा और सर पर उठा कर ले जाऊं थी। घर आती तो कपड़े गंद में सने होवे थे। सारा दिन बदबू से निकल कर आती,मगर बदबू मुझमें से न निकलती। शाम को रोज तेरे भाईजी से पिटती। हारी-बीमारी में एक छुट्टी भी हराम थी। एक दिन छुट्टी करने पर 275 रुपए कटते, कभी-कभी तो साल भर का इन्क्रीमेंट ही काट लेवें थे। आज मैं रिटायर हो गई हूं, इस गंदे काम से रिटायरी के साथ-साथ मुझे कैंसर भी मिला। तेरे भाई जी की मौत भी इसी गंदे काम से लगे कैंसर से हुई थी। आज इस बीमारी से लड़ रही हूँ, सरकार से मिल रही 7500 रुपए महीने की पेंशन और 500 रुपए मेडिकल खर्चे के साथ।''

इन लाइनों में बिरमा के जीवन की कहानी तो सिमट सकती है, मगर जीवन के 40 साल हर तरह के मौसम में, हर रोज जिस जहालत को बिरमा ने जिया होगा उसका अंदाजा लगाना नामुमकिन है।

बिरमा का जीवन सफाई कामगार समाज की महिलाओं की वो अनसुनी व्यथा है, जिससे सामान्य जनजीवन हमेशा से अंजान रहा है। सफाई कामगार महिलाओं के जीवन की एक झलक ही दिलो-दिमाग को विचलित किये बिना नहीं रह सकती।

एक मां सुबह-सुबह अपने सोते हुए बच्चों को छोड़ कर, धूप, धुंध, बारिश, गर्मी, सर्दी की परवाह किए बिना हाथ में लंबे डंडे की झाड़ू, कमर पर तसला और पंजर लिए निकलती है। सड़कों, गलियों और नालियों को साफ करने। मल-मूत्र और कूड़े से अटी नालियों को झाड़ू-पंजर से निकालती हैं। नाली निकालते हुए कभी-कभी गंद झिटक कर कपडों, हाथों, पैरों पर गिर पड़ता। मल-मूत्र से भरे तसले को सर पर उठाकर गाड़ी में फेंकती। बारिश के समय स्थिति इस कदर निर्मम हो जाती है, मल-मूत्र बह कर मुँह तक आ जाता हैं। ऐसे में किस हालात से सफाई कामगार महिला जूझती होगी। उसे शब्दों के माध्यम से कह पाना भी मुश्किल है। किस कदर बदबू फैलती होगी सोच कर ही बदन में सिरहन दौड़ जाती हैं। मगर सफाई कामगार महिला इस बदबू के साथ अपने जीवन का बड़ा हिस्सा गुजारती है।

सफाई कामगार महिला से बातचीत के दौरान मैंने देखा एक व्यक्ति नाक पर रुमाल रखे वहाँ से गुजर रहा था। जबकि

सफाई कामगार महिला केवल सड़क पर झाड़ू लगा रही थी। बदबू का दूर-दूर तक अहसास नहीं था। मैं खुद को रोक नहीं सकी। उस व्यक्ति को रोक कर मैंने पूछ ही लिया आप नाक पर रुमाल रखकर क्यों चल रहे हैं ? तब उस व्यक्ति ने जो जवाब दिया उसने मेरी चेतना को हिल्ला कर रख दिया। उसने कहा ''मुझे इन चूहड़ों में से बदबू आती हैं।'' कैसी विडम्बना है, जो व्यक्ति समाज को स्वस्थ रखने हेतु खुद सदियों से जहालत में जी रहा है, उस व्यक्ति से बदबू आती है।

गंदे काम की जहालत, समाज का उनके प्रति रवैया ही सफाई कामगार महिला की मुश्किल नहीं हैं बल्कि घर-परिवार के हालात भी चुनौती पूर्ण बने रहते हैं। सफाई कामगार समाज की बड़ी आबादी नशे के अधीन है। सीवर में उतर कर गंदगी को अपने हाथों से साफ करते हुए, उसकी बदबू से बचने के लिए शराब का नशा पहले इनकी मजबूरी रहा होगा। मगर मजबूरी कब आदत में तबदील हो जाए इसका पता नहीं चलता। ऐसा ही सफाई कामगार समाज के साथ है, जिसका खामियाजा भी सफाई कामगार महिला को भुगतना होता है। शराब के नशे में अपने पतियों से रोज पिटती हैं, जलील होती हैं।

जिन बच्चों को सुबह सोता छोड़ महिलाएं काम पर चली जाती हैं। उनका भविष्य भी दांव पर लगा रहता है। बच्चों का स्कूल और शिक्षा से कोई वास्ता नहीं रहता। एक बड़ा तबका शिक्षाविहीन रह जाता है और सफाई कर्मचारी के बच्चे भी काम की तरफ चल देते हैं।

सफाई कामगार महिलाओं में वे महिलाएं भी आती हैं, जो घरों में साफ-सफाई का काम करती हैं। यद्यपि संविधान के अन्तर्गत छुआछात करना कानूनी अपराध है, लेकिन समाज में आज भी छुआछात विद्यमान हैं। घरों में साफ-सफाई करने वाली एक महिला ने बातचीत के दौरान बताया। ''मेरी कोठी वाली मैडम ने सफाई करने वाली के चाय के बर्तन बाहर गेट के पास ही रखवाए हुए हैं। उसे गेट के अंदर नहीं आने देती मैडम। एक दिन सफाई वाली अंदर आकर कुर्सी पर बैठ गई तो मुझे घनी बातें सुनाई। फिर वो कुर्सी गंगाजल से धुलवाई।'' इसके कई प्रकरण भाषा सिंह के यात्रा वृतांत ''अदृश्य भारत- मैला ढोने के बजबजाते यथार्थ से मुठभेड़'' में पढ़े जा सकते है।

रास्ते पर भीख मांगने वाला भिखारी भी इनकी तुलना में कहीं ज्यादा सम्मानजनक स्थिति में है। यदि किसी भिखारी को 100 रूपये देकर कहा जाये कि सिर्फ कागज से भरा डस्टबीन फेंक दे। तो उसका जवाब भी यही होगा 'मैं चूहड़ा नहीं हूं।' इस वाक्य से ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि सफाई कामगार समाज के हालात जहालत से कम नहीं होगी।

कैंसर की बीमारी से लड़ते-लड़ते इसी वर्ष बिरमा की मृत्यु हो गई है। गहराई से देखा जाए तो कैंसर ने नहीं, बल्कि इस गंदे-निर्मम सफाई के काम के कारण कितनी बिरमाएं मौत की नींद सोई हैं।

संपर्क- 9896875604

कविताएं

कौशल पंवार

भंगी महिला

भंगी महिला सहती है
मैला ढोने का दंश
उठाती है मल से भरी टोकरी
घुटने से होती हुई
छाती के बल से
सिर तक पहुंचाती है
भंगी महिला।
भंगी महिला के ऊपर
गिरता है
टप-टप-टप-टप मलमूत्र
कभी पल्लू से पोंछती
कभी पल्लू को खसकाती
कहीं ढल न जाए
कहीं अंट न जाए
इज्जत सरे बाजार
भंगी महिला
कुरड़ी पर पहुंचकर
थोड़ी देर रुकती है
ठहरती है उसकी नजर
सोचती है भंगी महिला
मैं, मलमूत्र से भी गयी-गुजरी
अरे! मलमूत्र तो धन्य है
जो कम से कम सिर पर तो है
और भंगी महिला
उठाती हैं मलमूत्र से भरा बोझा
और चल पड़ती है
तिलांजलि देने
उस सभ्य कहे जाने वाले
समाज को धिक्कारती है
हुंकारती है इस व्यवस्था पर
सदियों की यातना का
हिसाब मांगती है
फेंक देना चाहती है
मलमूत्र से भरा बोझा
सभ्य (?) समाज के ऊपर
छीन लेना चाहती है
अपने हिस्से का खुला आसमान
ऐ! व्यवस्था के ठेकेदारों
अब संभल जाओ
देखो, देखो! वे आ रही हैं
भंगी महिलाएं
हाथ में झाड़ू की जगह
कलम उठाये भंगी महिलाएं

सम्पर्क-9999439709

जयपाल

बहिष्कृत औरत

शहर के बाहर से
एक औरत
शहर के अंदर आती है
घरों पर से
मिट्टी झाड़ती है
फर्श चमकाती है
गलियों को
बुहारती है
पी जाती है
नालियों की सारी दुर्गंध
गली-मुहल्लों को सजा देती है
अपनी-अपनी जगह
इस तरह-
जब सारा शहर रहने लायक हो जाता है
यह औरत शहर से बाहर चली जाती है।

सम्पर्क-9466610508

हरियाणा का रंगमंच : परिदृश्य और संभावनाएं

□प्रस्तुति-अरुण कुमार कैहरबा

नाटक व रंगमंच सामाजिक संवाद का जरिया है। यह भी सही है कि हरियाणा में नाटक की कोई समृद्ध परंपरा नहीं है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में हर कस्बे-शहर में नाटक-मंडलियां बनी हैं। नाटक प्रशिक्षण के केंद्र भी बने हैं। रंगकर्मियों के प्रयासों से नाटक को देखने की नजर भी बदली है। रंगमंच में लड़कियां भी आ रही हैं। इसके बावजूद रंगकर्म के अनुकूल परिवेश में अनेक प्रकार की बाधाएं हैं। हरियाणा सृजन उत्सव-2017 में दूसरे दिन 26 फरवरी को 'हरियाणा का रंगमंच : परिदृश्य और संभावनाएं' विषय पर परिसंवाद आयोजित किया। आत्मालोचना के साथ रंगमंच के विभिन्न पहलुओं पर गंभीर चर्चा हुई। इसमें रंगकर्मी दुष्यंत, मनीष जोशी,नरेश प्रेरणा ने हिस्सा लिया। इसका संचालन रंगकर्मी एवं नाटककार कुलदीप कुणाल ने किया। पाठकों के लिए यह परिसंवाद प्रस्तुत है। - सं.

कुलदीप कुणाल - ब्रेख्त के नाम के बिना नाटक की बात पूरी नहीं हो सकती। उनका कथन है-

कोई नहीं पूछेगा
कि हुस्न कमरे में कब दाखिल हुआ
पूछा जाएगा
कि उस दौर के फनकार कहां थे।

उन्हीं की दूसरी कविता है-

मैंने शेरों को चकमा दिया
मुझे जो हड़प गए वो खटमल थे

इन दो कविताओं की अलग-अलग पंक्तियों के अन्तर्सबंधों को खोल दें तो हमें ब्रेख्त के नाटक की जमीन के साथ हरियाणा के नाटक की जमीन भी समझ में आती है। हुस्न के मायने भी समझ में आते हैं। हुस्न का मतलब कोई हूर-परी या स्त्री नहीं है। इसके अनुवाद पर बात करते हुए बहुत से लोग अक्सर इसके यही मायने निकालते हैं।

लालच और दबाव है समय का। आज समय का दबाव है कि सरोकार छोड़ कर बाजारू या सफल कहे जाने वाले टैग में बंध जाएं। यह मैंने कर लिया, अब मैं सफल हो गया। अब हमें हर कोई देख रहा है। हरियाणा के कलाकार में इस जगह पहुंचने की चाह देखने को मिलती है। सफल होने का दबाव दुनिया का नहीं, खुद का खुद पर। खासतौर पर एक कलाकार के नाते। कि जी मैं कलाकार हूं और हिट कलाकार हूँ। मेरी तरफ दुनिया देखे एक बार। ब्रेख्त की पंक्ति कि मैंने शेरों को चकमा दिया, मुझे जो हड़प गए वो खटमल थे। छोटी-छोटी चीजें हमें अपनी तरह का काम और कला की तरफ जाने से रोकती हैं। हमें पता ही नहीं चलता कि हम कुछ और करने निकले थे लेकिन कुछ और करने लग जाते हैं।

इस चर्चा में सभी पैनलिस्ट अपने अनुभव साझा करेंगे कि किस तरह से हम नाटक कर रहे हैं। आत्मालोचना के साथ हम रंगमंच पर चर्चा करेंगे। आत्मालोचना के साथ हम समझने की कोशिश करेंगे।

दुष्यंत : रंगमंच में हरियाणा के रंग नहीं आ रहे

ब्रेख्त की एक अन्य कविता है-

क्या अंधेरे वक्त में भी गीत गाए जाएंगे
हां अंधेरे वक्त के बारे में गीत गाए जाएंगे।

आज के अंधेरे वक्त के बारे में हम गीत गा रहे हैं। ऐसे गीत अकेले नहीं गाए जा सकते। भारत के संदर्भ में प्रेमचंद ने कहा है कि हम कलाकारों का काम केवल महफिल सजाना नहीं है। हमारा दर्जा इतना ना गिराइये साहब। हम राजनीति व समाज को मशाल दिखाते चलते हैं।

हरियाणा के बारे में कहा जाता है कि एग्रीकल्चर ही यहां की कल्चर है। यदि हम ग्रीक, रोमन, इटली, जर्मनी, पूरे यूरोप, जापान और एशिया का इतिहास देखें तो वहां भी एग्रीकल्चर ने ही कल्चर को पैदा किया है। ग्रीक में एक बहुत बड़ा फेस्टीवल हुआ करता था, जहां से फिर संसद का निर्माण हुआ। ओलंपिक का निर्माण हुआ। और सबसे बड़ा रंगमंच का एक केन्द्र स्थापित हुआ। वहां डिफीरेम नाम के देवता, जिन्हें गॉड कहा गया। इस गॉड का स्वरूप बिल्कुल अलग था। एक ऐसा इमेज, जो सबको अपने साथ कनेक्ट करे। वाईन और एग्रीकल्चर के उत्साह में। जैसे यहां पर त्योहार मनाए जाते हैं। जब किसान अपने खेतों से फसल काट कर लाता है। उससे जो पैदा होता उससे कल्चर की शुरूआत हो जाती है।

इस ग्रंथि से बाहर आना पड़ेगा कि हमारी तो एग्रीकल्चर ही है। यहां कोई कल्चर नहीं है। हम अपनी ताकत को बहुत सीमित करके देख रहे हैं। यहां की रागनियां, यहां का सांग, यहां की भाषा इसी एग्रीकल्चर से पैदा हुई।

हम लेखन में मात खाते हैं। ब्रेख्त ने लिखा, उनके नाटक खेले गए। शेख्सपीयर ने लिखा तो उनके नाटक खेले गए। इब्सन ने लिखा उनके नाटक खेले गए। लख्मीचंद ने सांग लिखे तो वे खेले गए। हमने लिखा क्या है?

उस समय की बहस देखिए। एक कलाकार दूसरे कलाकार के बारे में पत्र लिख रहा है। हम लिखकर एक-दूसरे की आलोचना करें। तब कहीं जाकर आलोचना और आत्मालोचना की जगह बनेगी। तभी संवाद हो पाएगा। फोन करने, एसएमएस और पत्र लिखने में फर्क है।

तीसरी बात-

कहीं मैं पीछे ना छूट जाऊं
ना लुट जाऊं,
कोई मुझे लूट ले,
इससे पहले मैं लूट लूँ
उधार मांग झूठ लूँ
चिल्ला-चिल्ला फिर मौज लूँ
भोग लूँ और एक दंभ लूँ
आ तू भी एक दंभ ले
तू भी कहीं पीछे ना छूट जाए
आ मेरे साथ तू भी छूट ले
मैं भी थोड़ी सी और छूट लूँ

हम यही तो कर रहे हैं। कहीं मैं पीछे ना छूट जाऊं। हम बिना कुछ पैदा किए कंपीटिशन में लग जाते हैं। हमने अलग-अलग स्पेस बना रखा है। सामूहिक रूप से जब कुछ पैदा नहीं करेंगे। तब तक संवाद नहीं बन पाएगा। नाटक संवाद और संघर्ष पैदा करता है। हम बिना कोई संवाद किए सींग फंसा रहे हैं। इससे नाटक पैदा होने वाला नहीं है।

हमने सारी चीजें ऊधार की ली हैं। ऊधार का रंगमंच, ऊधार के गीत, ऊधार के त्योहार, ऊधार के सम्मेलन, ऊधार की भाषा। अपनी भाषा और अपने रंगों में हम बात ही नहीं करते। हम उसे नकारते हैं। हरियाणा की भाषा में उर्दू के कितने अल्फाज होते हैं। कितनी समृद्ध भाषा है। यदि गांव में जाकर हम महिलाओं से बात करेंगे, उनके किस्से सुनेंगे तो हम हरियाणा की भाषा से प्रेम करने लग जाएंगे। हिन्दी अपने आप को कहां से कहां तक लेकर आई है। हमें अपनी मानसिकता को व्यापक करना होगा। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, ना कि रिजिडिटी का।

हरियाणा का रंगमंच नहीं बन पाया। हम चेखव को ढूंढना चाहते हैं, शेक्सपीयर को ढूंढना चाहते हैं। रंगमंच में हरियाणा के रंग नहीं आ पा रहे। हरियाणा में हरियाणा का रंगमंच नहीं हो रहा। यहां के दुखदर्द, यहां की बात, यहां की खुशी। वह रंगमंच में नहीं आती।

लड़की को रंगमंच में लाने के लिए तो पूरा महाभारत होता है। कोई ऐसा संस्थान नहीं है, जहां पर लडक़े-लड़कियां मिल कर रंगमंच की सृजना कर सकें। यहां की सांग की भाषा क्यों नहीं बदली। क्योंकि हमने नदी के दोनों किनारों को साथ लेकर चलने की कोशिश नहीं की। यही आधुनिक रंगमंच में हो रहा है। किसी कोने से लडक़ी आ भी जाए तो उसके साथ हादसों का सिलसिला शुरू हो जाता है।

अंत में हमें अपने आप को देखना आना होगा। जो काम हमने किया है। उससे हट कर आलोचना के साथ हम दोबारा काम का निर्माण सच्चाई के साथ कर सकते हैं। इसी में हमारी सृजना है।

कुलदीप कुणाल: नाटक को देखने की नजर बदली है

दुष्यंत ने कहा कि लिखने का कल्चर नहीं है। खास तौर पर नाटक लिखने का। नाटक लिखने की जरूरत का मतलब है इन्सानी जरूरत। लिखने की जरूरत को हरियाणा में कभी देखा नहीं गया है। यही वजह है कि हरियाणा में लख्मीचंद तो हुए, लेकिन सांग के बाद नाटक की जमीन आगे नहीं बढ़ी। जो बढ़ा तो नाटककार बहुत कम पैदा हुए।

नाटक जरूरत का माध्यम है। यदि हम अपने समाज को देख पाएंगे तो लिख भी पाएंगे। हमने बहुत ज्यादा अनदेखी की है अपने आस-पास की। हमारे पास नाटककार के रूप में नाम नहीं है। दस तो क्या दो नाम लेने के लिए हमें काफी देर सोचना पड़ेगा। यदि हमने लख्मीचंद को पैदा किया तो उसके बाद हमारे पास क्या है। इसका हमें संज्ञान लेना होगा।

कविता लिखने वाले हमारे बीच में हैं, लेकिन नाटक लिखने वाले और नाटक की जरूरत समझने वाले लोग हमारे बीच में नहीं हैं। नाटक की समीक्षाएं नहीं होती। हरियाणा में नाटक करने वाले लोग तो हैं लेकिन उनके रिव्यू नहीं होते। उन प्रस्तुतियों पर बात नहीं होती। नाटकों पर चर्चाओं के साथ-साथ नाटक लिखे भी जाएं।

यह पक्की बात है कि पिछले दिनों नाटक को देखने की नजर बदली है। नजर बदलने की गति को तेज करने की जरूरत है। हमारे बीच में भी नाटक को गंभीरता से नहीं लिया जाता। कलाकार बस कलाकार है। उनके लिए हमारी कोई नजर विकसित नहीं हुई है। हम यही मानते हैं कि वह बहुत अच्छा एक्टर है। इस स्थिति से हम बाहर नहीं आए हैं। नाटक में एक

अभिनेता के ऊपर जो दबाव हैं। उसके दबावों को हम नहीं देख पा रहे हैं। बाजार का दबाव, घर का दबाव। घर के लोग कहते हैं कि नाटक में भला कौन से कुएं का मीठा पानी निकाल आओगे। छोड़ो भईया दुकानदारी करो। अभिनेता कहता है कि मुझे अभिनय करना है। अभिनय और अभिनेता के बीच में दबाव को देखने वाला कोई है नहीं। छोटे से अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि अभिनेता और नाटक के कलाकार शहीद हो रहे हैं। शहीद का मतलब यह कि वे खप रहे हैं। उनके पास दिशाएं नहीं हैं। हमने उन्हें प्लेटफार्म नहीं दिए। हमारे नाटक एक एक्टीविटी होकर रह जाते हैं।

अभिनेता की चेतना की कोई बात नहीं हो रही है। लिखने की परंपरा नहीं होने के कारण अभिनेता लिखने के काम के साथ जुड़ता नहीं है। लिखने की परंपरा का मतलब पढ़ने की परंपरा भी है। लिखने की आदतें पड़ेंगी तो पढ़ने की भी आदतें पढ़ेंगे कि उसने क्या लिखा है। वह क्या आलोचना कर रहा है।

फेसबुक पर वर्बल वोमिटिंग हो रही है। फेसबुक पर पचास हजार चीजें लिख दीजिए। सीरियस काम होने वाला नहीं है उससे।

मनीष जोशी: आर्टिस्ट का काम रिएक्ट करना होता है

स्टेज पर एक्ट करता हूँ। आर्टिस्ट पर हमने यह कविता लिखी थी –

साडी सोच अवल्ली हे
साडियां वखरियां बातां
साडा इक्को मुरशद हे
साडियां सांझियां जातां
सच लई हां खड़ जांदे
लोड़ पवे तां अड़ जांदे
साडे मुंह ते सफदर कह गया
लग नहीं सकदे ताळे दोस्तो
असी हां नाटक वाळे दोस्तो

ताड़ियां जद वी सुणदे हां
उठदा कोई जुनून जेहा
पीठ ते थापी जद है वजदी
दिल नूं मिलदा सुकून जेहा
हंजू वण के तिर जांदी
एन्नी खुशी कोण संभाळे दोस्तो
असी हां नाटक वाळे दोस्तो

ऐ स्टेज है साडी मावां वरगी
ऐ गॉड दियां छावां वरगी
ऐसनूं सजदा जद हां करदे
लगे पीर दी थावां वरगी
फर्शों–अरर्शों लै जांदी
जे इन्नू हिक नाळ ला लईये दोस्तो
असी हां नाटक वाळे दोस्तो

नींद दी चादर लै जदों
जग सारा ए सो जांदा
उस वेळे एक कलाकार
स्टेज ते पात्र हो जादां
साडियां रिहर्सलां खांदी है तूण्यां नूं
ते पी जांदी हे पाळे दोस्तो
असी हां नाटक वाळे दोस्तो
असी हां नाटक वाळे दोस्तो

हरियाणा में रंगमंच की बात हो रही है। हम सब परेशान रहते हैं कि एक्टर क्या करे। काम के प्रति ईमानदारी नहीं है। कोई व्यक्ति को किसी संस्थान में आठ घंटे काम करने के बदले सेलरी मिलती है। क्या हम थियेटर में आठ घंटे दे रहे हैं? हम पूरा समय नहीं दे रहे। यदि हम पूरा समय दें तो थियेटर से कोई शिकायत नहीं रहेगी। पूरा समय देने पर ही आऊटपुट मिलता है।

लिखने की जहां तक बात है तो हरियाणा में बहुत से मुद्दे हैं। हम अखबार पढ़ते हैं तो रिएक्ट नहीं करते हैं। आर्टिस्ट के रूप में हम रिएक्ट नहीं करते हैं। आर्टिस्ट का काम रिएक्ट करना होता है। रिएक्ट करेगा तो लिख भी पाएगा। बहुत कुछ है हरियाणा में लिखने का।

सवाल यह है कि हम किस तरह का नाटक करें। जिस तरह का माहौल देश में है, नाटक करते हुए बहुत कुछ सोचना पड़ता है। यह सोचना पड़ता है कि कहीं मैं किसी की भावनाएं तो आहत नहीं कर रहा हूँ। कुछ दिनों पहले मायाराव का नाटक रूकवाया गया। गिरीश कर्नाड का नाटक रूकवाया गया। इसके खिलाफ कोई लामबंद नहीं है। हम आपस में इतना बंटे हुए हैं कि बाहर जो कुछ हो रहा है उसे देख नहीं पा रहे हैं। रिएक्ट नहीं कर पा रहे हैं। हमें मिलजुल कर काम करना होगा, यही एक उपाय है।

एक और कविता के साथ मैं अपनी बात को सम्पन्न करता हूँ–

साये में इक बहार के वीरान सा हूँ मैं
अपने ही घर में आरजी मेहमान सा हूँ मैं
क्या देखते हो मुझमें मुझे देखने से क्या
बाजार में बिकता हुआ सामान सा हूँ मैं
नहीं मुझको खबर कहां किसपे जा गिरूं
एक रेत का भटका हुआ तूफान सा हूँ मैं
मुझसे मेरे वजूद की हस्ती ना पूछिये
गालिब ज़फर और मीर का अरमान सा हूँ मैं

कुलदीप कुणाल –

नाटक में एक बात जरूर है। जब नाटक की बात होती है उसमें ब्रेख्त भी आ जाते हैं। गालिब भी आ जाते हैं। जफर भी आ जाते हैं। क्योंकि नाटक में हर विधा को समा लेने की शक्ति है। इसलिए नाटक को टोटल थियेटर बोलते हैं। नाटक में गाया भी जा सकता है। डांस भी कर सकते हैं, भंगिमाएं भी बना सकते हैं, संवाद तो है ही उसमें। विचार प्रधान तो नाटक होता ही है। द्वंद्व और टकराहट से निकलता है तो उसमें दो विचार अलग–अलग तरह के होने जरूरी हैं। नाटक में सारे गुण होते हैं।

इसलिए नाटक में गालिब भी आते हैं और गालिब से चल कर जफर तक पहुंचते हैं। जफर और गालिब दोनों में आलोचना का रिश्ता था। जफर बादशाह था। गालिब उसके कान खींच चला जाता था कि आपने ये क्या लिखा है। गालिब लगातार आलोचना करते रहे और जफर अपना लिखना सुधारते रहे। हमें यह सीखना चाहिए कि सींग भी अड़ाए रखो। लेकिन उसके बीच में हमारा सीखना–सिखाना भी चलता रहे।

नरेश प्रेरणा:हरियाणा का नाटक यहां की रियेलिटी में गुंथा होगा

हरियाणा के बारे में हमने कई तरह की बातें सुनी हैं। हरियाणा की कल्चर पर डाउट किया जाता है। मैं एक–दो बातें कहना चाहता हूँ। हरियाणा की कल्चर में गाहे–बगाहे लख्मीचंद का नाम आता है। आना चाहिए। रागनी में इसके अलावा बहुत से लोग हुए। बाजे भगत व मांगेराम हुए। उनका नाम बहुत कम आता है। रागनी के अलावा क्या हुआ। कुछ था कि नहीं था। हाली पानीपती से हमारा रिश्ता है कि नहीं है। हाली पानीपती को भुला दिया जाता है। वे हमारी कल्चर का, हमारे रोज़मर्रा के मिज़ाज का हिस्सा नहीं बनते हैं। हाली जिन्होंने लड़कियों का पहला स्कूल शुरू किया।

हरियाणा का नौजवान उनको नहीं जानता।

ख्वाजा अहमद अब्बास आजादी के आंदोलन के दौरान कलाकर्मियों व लेखकों का जो एक मूवमेंट खड़ा हुआ, उसकी नींव डालने वालों में शामिल हैं। और पीछे जाएंगे तो फरीद और सूरदास हैं। हम उनके साथ नहीं रिलेट करते। हमारा विमर्श उनकी रचनाओं से, उन्होंने जिस तरह जीवन को देखा, उससे रिलेट नहीं कर पाते। ऐसे में अगर दूसरे लोग कहते हैं कि हरियाणा में कल्चर नहीं है तो वे ठीक कहते हैं। क्योंकि हम कल्चर को पैदा करने वालों के साथ बहुत ही दूरी बनाए हुए हैं।

आत्मालोचना से संवाद करने की जरूरत है। अपने नाट्यकर्म के दौरान भक्तिकालीन रैदास, मीरा, कबीर व सूरदास को हम गाते हैं तो लोग उनसे रिलेट करते हैं। आधुनिक मूल्यों के साथ यदि हमने उनके साथ रिश्ता नहीं बनाया तो यह हमारी कमजोरी है। शेख फरीद, सूरदास, हाली पानीपती, ख्वाजा अहमद अब्बास बहुत से लोग हैं, तरह-तरह के। अंबाला का हमारा पूरा घराना होता था। जोहरा बाई अंबालेवाली, जो कि लता की भी सीनियर हैं। हमारे फिल्मी संगीत की। हम उन्हें अपने बुजुर्ग की तरह याद नहीं करते। इसकी वजह है। बंटवारे के समय एक आबादी को यहां से खदेड़ा गया। पंजाब और पंजाबी में बहुत सारा साहित्य है इसके बारे में। इस इलाके में यहां के रचनाकारों ने क्या लिखा। भुलाया उसे। जो सामूहिक परंपरा थी, उसे भी भुलाया।

इस समय जो हरियाणा में रंगकर्म का काम हो रहा है। कुछ जुगाड़ कर लेते हैं। दो-चार शो का जुगाड़ करने के बाद आराम से रहते हैं। हरियाणा के रंगकर्मियों में अपने काम के बारे में कोई संवाद नहीं है। उसके जो चैलेंजिज हैं, शायद वे उसे महसूस करते होंगे। हरियाणा में काम करना है तो क्या चैलेंजिज हैं। वे हमारे अंदर हैं। बाहर नहीं आते वे। किसी को बताते नहीं है। वे चुनौतियां किसी की व्यक्तिगत नहीं हैं, वे सामूहिक हैं।

हरियाणा के रंगमंच में लड़कियां आ सकती हैं। उन्हें लाने के लिए कुछ प्रयास करने होते हैं। टीम के अंदर का वातावरण बदलना होता है ताकि लड़की टीम में इज्जत के साथ काम कर सके। नाटक करने से पहले नाटक की कल्चर बनानी होती है।

शहरों, कस्बों व यूथ फेस्टिवल में फिर भी नाटक हो जाता है, क्योंकि उसके साथ कैरियर व सर्टिफिकेट जुड़ा है। रिमोट एरिया में बिना किसी स्वार्थ के नाटक करते हुए लड़कियां जो चैलेंज ले रही हैं, हमारे रंगकर्मी उसे नहीं जानते।

जो कुछ है, उसकी अनदेखी करके हम कुछ नया नहीं बना सकते। जो कुछ है उसे भी धूल में मिलाते चले जाएंगे। नाट्य लेखन के संदर्भ में एक बात यह कि जब भी हम नाटक करने लगते हैं, पुराने, ऐतिहासिक, ग्रीक का नाटक। ना जाने क्या-क्या करने लगते हैं। कर लीजिए, लेकिन एडेप्ट कीजिए। हरियाणा की जमीन पर उसे एडेप्ट कीजिए।

हरियाणा का नाटक यहां की रियेलिटी में गुंथा होगा। तो बनेगा यहां का नाटक। यहां के चैलेंजिज, बहुत आराम से मान कर चलते हैं कि दलितों के साथ ऐसा व्यवहार होगा ही। लडकी यदि स्टेज पर नहीं आ पा रही, कन्या भ्रूण हत्या हो रही है, ऑनर कीलिंग हो रही है। इसे हम मान कर चलते हैं कि परंपरा की चीजें हैं। रंगकर्म के साथ शायद इसका कोई रिश्ता नहीं है।

हरियाणा में ऑनर किलिंग क्यों हो रही है, इसे ड्रिल करने की जरूरत है। क्या चीजें छोड़ी, जिसकी वजह से प्रेम की जगह नहीं बन पाई है। प्रेम-किस्से यहां पर है। उसके बावजूद क्यों यह जगह नहीं बन पाई प्रेम के लिए। सिनेमा का प्रेम देख कर खुश होते हैं, ताली बजाते हैं, दुख महसूस करते हैं, लेकिन जब वह हकीकत में सामने आता है तो हमारी सोसायटी में बंद करके रखी गई कौन सी गुत्थियां हैं, जो इसे स्वीकार नहीं कर पाती। ये गुत्थियां आखिर क्यों खुल नहीं पा रही हैं। नाटक उन गुत्थियों से संवाद करने का जरिया हो सकता है।

जो नाटक हमारे हरियाणा के समाज में छिपा हुआ है, जो तरह-तरह के द्वंद्व हैं उसका नाटक हरियाणा के रंगकर्मी को लिखना पड़ेगा और करना पड़ेगा।

सम्पर्क-94662-20145

हरियाणवी लेखन का बदलता मिज़ाज

□प्रस्तुति-अरुण कुमार कैहरबा

*हरियाणवी की जब बात चलती है तो हमें सिर्फ लख्मीचंद, बाजे भगत, मांगे राम याद आते हैं। हरियाणवी वहीं नहीं खड़ी है। हरियाणवी भाषा बन रही है। जिस हरियाणवी को बोलते हुए 15 साल पहले यूनिवर्सीटी में ये सोचते थे कि हमें देहाती और गंवार समझा जाएगा। आज वही हरियाणवीं ब्रांड के तौर पर आगे बढ़ रही है। इसे लोग बोल रहे हैं। हरियाणवी एक बनती हुई भाषा है। कोई भी भाषा गद्य से बनती है। जब गद्य में लेखन होता है तो ही भाषा का निर्माण होता है। हरियाणा की धरती की यह खास बात है कि सब दोहे, कविताएं और तुकबंदी वाली चीजें लिखी जाती रही हैं। हरियाणवी के लेखन का स्वरूप बदल रहा है। उसमें गजलें लिखी जा रही हैं। उसमें लघु कथाएं लिखी जा रही हैं। उसमें राजनीतिक लेखन हो रहा है। उसमें व्यंग्य हो रहा है। हरियाणा के लेखक के तौर पर पहचाने जाने वाले लेखकों को यह बात समझनी होगी कि यहां के लोगों की स्थानीय भाषा में भी वह शक्ति मौजूद है, जो लोगों की पीड़ाओं और तकलीफों को अभिव्यक्ति कर सकती है। हरियाणवी का स्वरूप बदल रहा है उसे स्वीकार करने की जरूरत है। हरियाणा सृजन उत्सव-2017 में दूसरे दिन 26फरवरी को दूसरा सत्र हरियाणवी लेखन का बदलता मिज़ाज विषय पर आयोजित किया गया। इस परिसंवाद में सुधीर शर्मा, रणबीर सिंह दहिया तथा नवरत्न पांडे शामिल रहे तथा इसका संचालन अमन वाशिष्ठ ने किया। परिसंवाद में हुई परिचर्चा प्रस्तुत है। -**सं.***

अमन वाशिष्ठ-

नवंबर 2007 में 'म्हारा हरियाणा' में प्रदीप कासनी ने गेस्ट एडिटोरियल लेख लिखा था। उसकी दो स्टेटमेंट से बात शुरू करना चाहूंगा। फोक पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं- इतना स्पष्ट है कि उसमें केवल वह फोक बल्कि फोक के व्यापक संसार का वही एकमात्र पक्षधर नहीं है, जिसका गुणगायन और पिष्टपेषण हरियाणवी साहित्य कर्म के नाम पर चलता रहता है।

पिष्टपेषण मतलब पिसे हुए को फिर पीसना। प्रदीप कासनी साहब फोक की अंडरस्टेंडिंग है प्राचीनता को जबरदस्त तरीके से उसमें बखानबाजी का जो एलीमेंट है, उसको क्रिटीक करते हुए कह रहे हैं। दूसरी बात प्रो. डी.आर. चौधरी की किताब-हरियाणा एट क्रॉस रोड्स: प्रोब्लम एंड प्रोस्पेक्टस के जिक्र से प्रदीप कासनी कहते हैं। डी.आर. चौधरी साहब हरियाणा को आलोचनात्मक तरीके से देखने वाले बहुत बड़े नामों में से एक रहे हैं। पींग के एडीटर के तौर पर, प्रोफेसर और लेखक के रूप में। उनकी किताब का टाईटल भी जाहिर करता है कि हम अभी भी क्रॉस रोडस पर हैं। नया हरियाणवी लेखन इन प्रोब्लमस को कैसे देखता है।

हरियाणवी लेखन का मतलब सिर्फ हरियाणवी भाषा व बोली में या उपभाषा में ही लिखा जाने वाला लेखन नहीं हरियाणा पर चाहे अंग्रेजी में लिखा जाने वाला प्रो. शीला भल्ला व प्रेम चौधरी का लेखन हो। हिन्दी में लिखा जाने वाला साहित्य हो या फोक राईटिंगस हों। इस तरह से अंग्रेजी, हिन्दी व हरियाणवी और कुछ उर्दू के लेखन में हरियाणा से संबंधित क्या-क्या समस्याएं उभर रही हैं। हरियाणा का लेखक उनसे कैसे डील करता है। इन सब पर हम बातचीत करेंगे।

प्रो. सुधीर शर्मा–

हरियाणा में हिन्दी, अंग्रेजी व हरियाणवी पर लेखन पर कम शब्दों में बात करने के लिए कहा गया है। ऐसे में एक शेर कहना चाहूंगा–

क्या उसका मनभेद बताऊं, क्या उसका अंदाज कहूँ
बात भी मेरी सुनना चाहे हाथ भी रख ले कानों पर

हरियाणवी में लेखन का बदलता मिजाज पर बात करते हुए सबसे पहले हमें यह देखना होगा कि किस चीज में बदला है। क्या चीज थी जो बदल कर अब हो गई है। हरियाणवी में मौखिक परंपरा बहुत समृद्ध है। यानी वो चाहे गीत हो, ग़ज़ल हो, सांग हो, मुहावरे हों, लोकगीत हो, रागनी हो। वह बहुत समृद्ध हैं। हरियाणा बनने से पहले ये सब चीजें मौखिक थी। तो पहला पड़ाव यह था कि उन्हें लिपिबद्ध किया जाए। वह हो गया। कुछ रह भी गए हैं। जो कि आने वाले समय में लिपिबद्ध हो जाएंगे। इसी तरह लोकगीत हैं। अब बदलाव क्या आया है। वह देखना कि कमी कहां रह गई है। सांग की रागनी में कितना कुछ हम तक पहुंच पाया है और कितना अभी बाकी है। यह मौखिक परंपरा से लिखित परंपरा में जाने का प्रश्न है।

इस गोष्ठी में बहुत सारे सवाल भी उठे हैं। एक तो बात यह है कि हम अपने पुराने लोकगायकों व लोक लेखकों में दो बातें देखते हैं और बाद में भी कि हरियाणा का बड़ा महिमामंडन किया गया है। देसां मैं देस हरियाणा जित दूध दही का खाणा। जैतराम से लेकर आज तक बहुत आदर्शवादी और रोमांचकारी तस्वीर प्रस्तुत की गई है। एक बदलाव तो यह आया है कि विद्रोही स्वर भी उभर कर आने लगे हैं। कुछ तो हमने सुने भी और कुछ लिखित रूप में भी हैं। इस काम को बहुत सारे लेखकों ने किया है। यह तो हम सब जगह सुनते आए हैं। कविता और गीतों में भी– नंबर वन हरियाणा, देसां मैं देस हरियाणा। यहां पर महाभारत हुआ था। यहां पर कार्तिकेय की राजधानी रोहतक थी वगैरह..वगैरह। लेकिन इसके विपरीत सुर भी आए, जो कि नई बात है। वह डॉ. रणबीर दहिया की एक नज़्म है। वह स्पष्ट कहते हैं–

मजदूर और किसान बिना
इन सबके सम्मान बिना
चेहरे पर मुस्कान बिना
हरियाणा नंबर वन कोन्या

यह एक नई बात आई है। सारा हरियाणा इसे क्यों नहीं मानता। इस पर भी बहुत विचार हुआ है।

हरियाणा आज संक्रमण काल से गुजर रहा है। हम लेबल लगाकर यह नहीं कह सकते कि यह व्यक्ति यह भाग यह उपभाग हरियाणा है। यह ग्रामीण है या यह शहरी है। एक आदमी दिल्ली नौकरी करता है और गांव में रहता है। वह जब जाता है तो हरियाणा की एक स्लाईस को दिल्ली ले जाता है। वह पटेल चौक पर बैठकर घड़वे पर रागणी गाता है। तो शहर के लोग इकट्ठे हो जाते हैं। उन्हें समझ नहीं आता लेकिन उसकी चाल–ढाल से खुश होते हैं। जब वह वापिस आता है तो भारत की राजधानी की एक स्लाईस एक परत वह अपने गांव में ले आता है। इसको हम क्या कहेंगे, ग्रामीण है या वह शहरी है। यह फ्यूजन संगीत में भी हो रहा है। साहित्य में भी हो रहा है। यह फ्यूजन भाषा में भी हो रहा है।

भाषा अपने आप में अच्छी या बुरी नहीं होती। भाषा अलग तो जरूर होती है। लेकिन उसकी प्रस्तुति कैसी है, इस पर निर्भर है। यह कहना पड़ेगा कि हरियाणा में चाहे नृत्य हो, भाषण हो, वादन हो, गायन हो, लेखन हो। उसकी प्रस्तुति बहुत अच्छी नहीं है। इसलिए उसमें आकर्षण नहीं होता। सवाल यह नहीं होता कि भाषा कैसी है? सवाल यह है कि उसको बोलने वाला कौन है। अगर बातचीत में मैं हरियाणवी बोलता हूं और मैं कहता हूं कि यह महिला कौन है? और अगर मैं कहता हूँ कि लुगाई कौण सै? एकदम नजरें उठती हैं। लेकिन जब गोविंदा गाना गाता है–मुझे ऐसी लुगाई चाहिए तो सारा हिंदुस्तान गाता है।

बहुत पहले एक फिल्म आई थी– बावरे नैन। उसमें केदार शर्मा ने पूरी की पूरी रागनी लेनी चाही थी। लेकिन गायिका राजकुमारी उसका उच्चारण ठीक नहीं कर पाई। उन्होंने कहा कि पहली लाईन तो यही रहेगी। पहली लाईन थी–बैरी बलम रे सच बोल, इब क्या होगा? इब ऐसा शब्द है, जो उसके बाद कभी भी इस्तेमाल नहीं हुआ, लेकिन पूरा हिंदुस्तान कहता है। बैरी और बैरण यह भी हरियाणवी शब्द हैं। इनका भी बहुत प्रयोग होने लगता है। तो आप किस संदर्भ में और किस जगह इसका इस्तेमाल कर रहे हैं, यह बहुत महत्वपूर्ण है।

जहां तक फ्यूजन की बात है। डॉ. दहिया की एक और नज़्म मैं उदाहरण के तौर पर दे रहा हूं–

जवान छोरी फासी खा ज्या
फेर के बाकी रह ज्या
श्यामी कोए कारण नहीं
या दुनिया के–के कह ज्या
दामोली छोरी नई दुनिया चाह्वै देखो
नया विचार उसनै बेचैन घणां कर जावे देखो
जैंडर बायस कितना खतरनाक इसका बेरा लागै
उत्साह डिप्रेशन बार–बार भीतर छोरी के जागै।

अब यह हरियाणवी भी है। अंग्रेजी भी है। हिन्दी भी है। चूंकि अब फ्यूजन का जमाना आ गया है तो विशुद्धता नहीं रहती है। हरियाणवी में अब बहुत से प्रयोग हो रहे हैं। उसके अंदर कव्वाली, ग़ज़लें, रैप व पोप यह भी होने लगे हैं। परंपरावादी बहुत से लोग कहते हैं कि यह ठीक नहीं है। आधुनिक बच्चे कहते हैं कि जब सब जगह हो रहा है तो हम भी करेंगे।

सवाल यह उठता है कि लेखक को यह सारी धमाचौकड़ी में अपनी जगह ढूंढनी है। वह क्या कहना चाहता है और क्यों कहना चाहता है। ऐसा भी नहीं है कि परंपरागत साहित्य में वह बातें नहीं हैं जो यहां हैं। टैगोर ने कहा था–शिक्षक वह जो प्रेरणा देता है।

लखमीचंद ने भी कहा था– लखमीचंद नहीं पढ़ रह्या सै, गुरू की दया तै दिल बढ़ रह्या सै। एबीसी की पढ़ाई जरूरी नहीं, दिल के बढ़ने की पढ़ाई जरूरी है। लेकिन कितने लोग हैं जिन्होंने उन पर रिसर्च की हो। कितने लोग हैं जिन्होंने लखमीचंद का अनुवाद किया हो। कितने लोग हैं कि लखमीचंद को इंटरप्रेट किया हो।

पुरानी रागणियों को ना तो ढंग से प्रस्तुत किया गया है और ना ही अच्छी तरह से उनको प्रचारित प्रसारित किया गया है। एक रागणी के बोल जोकि आज की कविता से कुछ मिलते–जुलते हैं, वे ऐसे ही हैं कि किसी भी संवेदनशील कवि की कलम से लिखे जा सकते हैं। बोल हैं–

सारा सामण बीत गया, झूल पड़ी ना ढाळे म्हं
तेरी फोटो गेल लड़ूयां जां सूं जो धरग्या था आळे म्हं

यह बहुत संवेदनशील है कि

जिसके ऊपर सामूहिक परिवार का बोझ है। अकेली है। बात करने के लिए कोई है नहीं। फौज में गए पति की फोटो को आळे में रखके वह उसके साथ लड़ाई करती है। यह बहुत ही बारीक पक्ष हैं। इनको ना अच्छी तरह से समझा गया है और ना समझाया गया है।

एक बात यह है कि इस ग्रामीण संस्कृति को कोई संरक्षक नहीं मिला है। बिना संरक्षक के कोई संस्कृति आगे नहीं जाती है। बढ़ी है लेकिन उस स्तर पर नहीं जिस स्तर पर बढ़नी चाहिए थी। नवाब झज्झर संरक्षक थे तो वह जमाना था जब झज्झर को 'उस्तादों का शहर' कहा जाता था। बहुत से लोग पाकिस्तान चले गए। अब कुछ हो नहीं रहा। अंग्रेजों ने बहुत दबाया तो वहां भी अब कुछ नहीं होता। लोग संरक्षण देते हैं लेकिन सीमित दायरे में। उसके बाहर भी कोई संरक्षण नहीं है। ऐसे प्रांत हैं जहां पर कई-कई अकादमियां हैं। कश्मीर में तीन हैं-डोगरी की अलग, उर्दू की अलग और लद्दाखी की अलग है। राजस्थान में सात हैं। राजस्थान के लंगा को, मांगणियार को सब जानते हैं। हरियाणा के जोगी को, समैया को कोई नहीं जानता। क्योंकि उन्हें सरकार का प्रश्रय नहीं है।

पचास साल हो गए हरियाणा को बने। लेकिन आज तक हरियाणा की कोई सांस्कृतिक पोलिसी नहीं है। जो लोग कुछ काम भी कर रहे हैं, वे अलग-अलग जगह कर रहे हैं। इसी में एक बहुत बड़ी रूकावट, जोकि शायद अवचेतन में है, कि हमारा बड़ा इन्स्यूलर कल्चर है। द्वीप का कल्चर है। हर कोई अपने द्वीप में प्रसन्न है। उससे आगे बढ़ने की इच्छा भी नहीं रखता है। नतीजा यह कि हरियाणा की संस्कृति बहादुरगढ़ से आगे नहीं है। हरियाणा की संस्कृति फरीदाबाद से आगे नहीं है। एक इन्क्ल्यूसिव कल्चर नहीं है, जिसके अंदर अहीरवाटी, मेवाती, बृज, जाटू भाषा सभी हो और हम कहें कि यह हरियाणवी के अंग हैं। अच्छी बात यह है कि यह उपभाग सामने आ रहे हैं। मेवात के एक गांव के नौजवान हैं-डॉ. माजिद मेवाती। उन्होंने मेवात पर एक पुस्तक लिखी है, जिसमें लोगों का आकर्षण बढ़ा है। एक सत्यवीर मानव हैं, जिन्होंने अहीरवाटी के संतों पर लिखा है। इनके ऊपर काम हो तो लगे कि हरियाणा में काम हो रहा है। हरियाणा में बहुत से ऐसे लोग भी हैं जोकि बहुत उपेक्षित हैं। अभी ऑल इंक्ल्यूसिव भावना पैदा नहीं हुई है। किसी ने बात तो मजाक में कही थी लेकिन लगता है कि संस्कृति का ही हिस्सा है-

किसी चौपाल में लोग बात कर रहे थे। किसी का लड़का मेजर हो गया। तो किसी ने आकर बात की कि उसनै बड़ी तरक्की करी। मेरठ जाकै मेजर हो ग्या। दूसरे ने कहा कि उड़ै होग्या तो के सै। म्हारे गाम मैं बण कै दिखावै। अब गांव में कोई कंटोनमैंट थोड़ी खोल रखी है। यह भाव अभी तक है कि मैं, मेरा इलाका, मेरा गांव, मेरा पान्ना, मेरा परिवार और सबके ऊपर मैं। कलैक्टिवनैस की चेतना पचास सालों में आई है। लेकिन इसकी गति धीमी है।

यह सींग उलझने वाली बात मुझे ठीक लगती है। हर एक क्षेत्र में इस तरह की स्थिति है। अगर यह खत्म हो जाती है तो इसके बाद बिरादरी अड़ जाती है। कहीं-कहीं शहरी और ग्रामीण हो जाता है। इस तरह के बहुत सारे डिवीजन हैं। फ्यूजन के जमाने में जब यह चीजें हों तो लेखन के लिए वे अच्छी नहीं हैं।

भाषा बदल रही है। अब हमें वो नहीं रहना चाहिए कि हम वही ठेठ भाषा बोलें जो लखमीचंद, मांगे राम, बाजे भगत, जमुवा मीर आदि बोला करते थे। या हमारे जोगी गाथाएं गाते हैं। निहालदे की कथा की भाषा आज के युवाओं को समझ में नहीं आएगी। लेकिन उसमें मीडिया भी अहम किरदार है। हिंदी अखबार में मैंने पढ़ा कि डिप्टी कमीश्नर ने सर्दी की वजह से तीन दिन की छुट्टी करवा दी स्कूलों में। तो खबर आई-थैंक्यू डीसी अंकल आपने छुट्टी करवा दी। हरियाणवी तो दूर की बात है। हिंदी में भी नहीं लिखा। यह सब जगह हो रहा है। प्रिंट व इलेक्ट्रोनिक मीडिया में भी हो रहा है। इस बात का बहुत अफसोस नहीं मनाना चाहिए कि भाषा में विकृति आ रही है। यह सब जगह हो रहा है।

कई बार पढ़ते हैं कि हरियाणवी एंडेंजर्ड भाषा हो जाएगी। यानी समाप्त हो जाएगी। लेकिन मुझे लगता है कि नहीं होगी। जहां पर इतना चिंतन हो रहा हो, इतनी बातचीत हो रही हो। लेखन हो रहा हो। यह बिल्कुल संभव नहीं है कि यह भाषा खतरे में पड़े। दो उदाहरण मैं देना चाहूंगा। एक लंबी कविता है, जिसमें बेटी अपनी मां से कहती है कि मैं बहुत तकलीफ में हूं। लेकिन जब तुम्हारी बहु आए तो वह सब मत करना। उसमें वह कहती है-

मां री जिस दिन भावज मेरी
किसे आग मैं जळण लगै
तु उस दिन रोईये, अपणा धीरज खोईये
अपणी बहु के मुखड़े पर
बेटी की बुनियाद टोईये
उसके बाद तनै ना रोणा पड़ैगा
किसे नै कूआं, जोहड़ ना टोहणा पड़ैगा।

यानी एक नई सोच है। जिसके बारे में बहुत चिंतित रहते हैं। इसी बात से एक और कवि है, जिन्होंने कुएं का मानवीकरण करके एक कविता लिखी है, जिसका शीर्षक है-

गाम साझळा कूआ-

मैं कूए मैं झांक्या तो वा दहाड़ मार कै रोया
बोल्या रै देख रामफळ
मेरी गेल यो कीसा मोटा चाळा होग्या
मैं बोल्या रै ठीक सै कुए-
तू अपणी करणी का फल पाग्या
मीठा पाणी तो तनै प्याया
पर चाळीस साल मैं बीस लुगाईयां नै तू खाग्या
कूआ बोल्या-घणां ना बोल
तेरे गाम के घणे भेद छुपार्‌या सूं
हर महीने एक अधजन्मी छोरी नै खार्‌या सूं
कोई पोलीथिन मैं पत्थर और लोथड़ा डाल कै
मेरे आगै फैंकज्या सै अर कोए मेरी गूण मैं फैंकज्या
फैंक कै कुत्यां नै खुवाज्या सै
तेरे आगै हाथ जोडूं-तूं मनै इस पाप तै बचा ले
गाम मैं तागड़ी पगड़ी करवा कै मनै ठाडा भरवा दे।

अब यह एक मानवीकरण कुएं का हो गया। उसमें भी हम बड़ा रोमांचकारी और आदर्शवादी, उसमें छणक-छणक हुआ करती। घूंघट का झपाट्टा लाग्या करता। आपके दृष्टिकोण से यह हो सकता है। उस महिला की सोच यह - जो धोघड़ लेकर के एक हाथ में बाल्टी, दूसरे कंधे पर नेजू और दूसरे हाथ में कुछ लेकर जाए। इसलिए के आप उस दृश्य को देखकर खुश हो जाएं। बहुत ही अच्छी टूम पहनकर जाया करती। यह होता था, वो होता था। वह एक नोस्टेल्जिया है। बीते जमाने की बात करके खुश होना।

लेकिन हरियाणा के नए लेखन में नई बातें भी आ रही हैं। यह मैंने दो उदाहरण दिए। इस तरह की और भी बहुत सारी कविताएं हैं। गांव और शहर के बारे

में भी। शहर की लूट खसोट और आपाधापी किस तरह बढ़ गई। यह सारी चीजें पसंद भी की जा रही हैं। यह नहीं कि कवि अपने लिए लिखता है। एक पंक्ति मैं ले रहा हूं-

अपणी-अपणी ढ़पली अपणे-अपणे गीत गावैं सैं
बेबे शहर मैं माणस नहीं, ऊंची-ऊंची भीत रहवैं सैं

आदमी नहीं रहता। वे असंवेदनशील लोग हो जाते हैं मारधाड़ के प्रति। इसके बारे में भी बहुत कुछ लिखा जा रहा है।

हरियाणवी एंडेंजर्ड क्यों नहीं होगी। वह जुबान एंडेंजर्ड होती है जो धीरे-धीरे विकसित नहीं होती। जहां इस तरह की गोष्ठियां और सेमिनार हों। यूथ फेस्टिवल में नई-नई चीजें आएं। ऐसी-ऐसी गीत, कविता व नज़्में आएं तो वह भाषा ऐसा नहीं कि मिट जाएगी। कई बार हमारे परंपरावादी मित्रों को बहुत लगता है कि इब हरियाणवी नै कोण पूछै सै। जब लिखने में अंग्रेजी व हिन्दी के शब्दों का प्रयोग हो रहा है तो वह भाषा लुप्त नहीं हो सकती। और क्यों नहीं हो सकती मैं एक कविता को पढ़ता हूं। इस कविता से आश्वस्त मैं भी होता हूं और आप भी होंगे।

यह जुबान वो है, जिसके बारे में कहा जाता है-

जमीं का हुस्न है, खेतों की ताज़गी है जुबां
रहट की लय है तो कहीं पनघट की रागनी है जुबां
जुबां मचलती है मिट्टी में चहचहों की तरह
ज़ुबां उगलती है आंगन में कहकहों की तरह
ज़ुबां तनती है चौपाल में जवां की तरह
ज़ुबां बनती है बैठक में दास्तां की तरह
ना दफ्तरों में, ना फाईलों में ढ़लती है

ज़ुबां पाक गांव की गोरियों की तरह
ज़ुबां अजीम है मांओं की लोरियों की तरह
जहां कहीं भी ये हो एहतराम करते चलो
और छांव जहां भी घनी मिले आराम करते चलो।

इसलिए हरियाणवी को कोई खतरा नहीं है।

अमन वशिष्ठ-

दो बातें यहां ध्यान आ रही थी। फ्यूजन की बात कर रहे थे डॉ. साहब। स्नेहा खानवलकर एक म्यूजिक डायरेक्टर हैं मुंबई में। उन्होंने ओए लक्की-लक्की ओए फिल्म के अंदर तू राजा की राज दुलारी को इलेक्ट्रिोनिक गिटार के साथ पेश किया था। मेरा ख्याल है वह क्लब में बजने वाला पहला हरियाणवी गाना था-तू राजा की राज दुलारी। मांगे राम की रागनी है। शिव-पार्वती का संवाद है। डॉ. साहब ने बहुत ही तफ्सील से बात रखी कि हरियाणवी में मिज़ाज कैसे बदल रहा है।

हरियाणवी लेखन में अभी तक जो बाधा मुझे दिखाई पड़ती है। एक तो यह कि उत्तर आधुनिक समय में नई-नई विचारधाराएं आई हैं। हमारा हरियाणवी एकेडमीशियन उसके साथ सहज नहीं है। वह अभी बहुत ही सिम्पलिस्टक शब्दावली में बात करता है। हमारे यहां यह बात बड़े गर्व से कही जाती है कि मैं घणा किताबी ना हूं। अध्ययन ना करने को हम अपनी स्ट्रैंथ के रूप में पेश कर देते हैं- मैं घण्या पढ़्या ना करता। इसे स्ट्रैंथ में कन्वर्ट करके नुकसान यह किया कि पूरे विश्व में जो अकादमिक धाराएं चल रही थीं। वे अकादमिक धाराएं तो आगे बढ़ती चली गई और हम बहुत ही सिम्पलिस्टिक टर्म्स में पुराने इडियम में बात करते रहे तो एक गैप पैदा हो गया। हमने नई एकेडमिक धाराओं के साथ बहुत दोस्ती अभी तक नहीं बनाई है।

डॉ. रणबीर सिंह दहिया-

मेरे दिमाग में कुछ उलझनें हैं, वही रखना चाहता हूं। कल से आज तक हम हरियाणवी सृजन की बात कर रहे हैं लेकिन जिसे हम भाषा कह रहे हैं, मैं इसे बोली कहता हूं। अभी भाषा बनी नहीं है हरियाणवी। हरियाणवी बोली है डायलेक्ट है यह। काल तै इब ताईं हरियाणवी डायलेक्ट म्हं म्हारा एक्सचेंज नहीं है। ठेकेदारी हरियाणवी की है। बात हिंदी म्हं है। एक बात तो मैं यह कहना चाहता हूं।

दूसरी बात यह कि बाकी चीज तो हरियाणवी म्हं के है, के नहीं। यह बात तो बाद मैं होगी। लेकिन हरियाणवी है क्या। हरियाणवी का मतलब यह है कि एक हरियाणा स्टेट है और उसमें हरियाणवी है। जैसे पंजाब में पंजाबी व पंजाबियत है। तमिल है। हरियाणा सै के इबे तक तो मैं याहे नहीं समझ पाया। फिर उसमें हरियाणवी और भाषा बोली तो आगली चीज सै। मेवाती म्हारे खाते म्हं नहीं। हिसार और सिरसा हमारे खाते म्हं नहीं। अंबाला और यमुनानगर हमारे खाते म्हं नहीं। यदि रोहतक और पुराना रोहतक ही यदि हरियाणा है तो इससे मुझे मुश्किल नजर आती है। पुराना हरियाणा मतलब - रोहतक, भिवानी, सोनीपत और झज्जर। रोहतकी भाषा यदि हरियाणवी है और हरियाणवी नेशनलिटी है रोहतकी। तो मुझे इसमें दिक्कत है। इसलिए मैं कहता हूं कि हरियाणवी भाषा अभी बनी नहीं है। भाषा की अब तक जो व्याख्याएं की गई हैं कि पंजाब में पंजाबी। पंजाबियत नेशनलिटी भी बनी। तामिलनाडू में तमिल भाषा बनी और उसकी नेशनलिटी बनी एक। हरियाणवी नेशनलिटी बण ली के? सोलह जिले तो अब भी खोस लिए एनसीआर नै। कित है हरियाणा ओ, जिसकी बात अपां कर रहे हैं। पहलां भी दिल्ली की जरूरतां की पूर्ति करदा रह्या। इब भी

दिल्ली की जरूरतां की पूर्ति कररया सै। और के कररया हरियाणा का बड़ा हिस्सा। क्या हरियाणवी नेशनलिटी विकसित होगी। इस पर बहस की जरूरत है।

मेरे पास इस विषय पर कहने के लिए बहुत कुछ नहीं है। लेकिन यह जरूर है कि जो अलग-अलग ऐरिया हैं, इन्हैं कट्ठा करकै हरियाणवीं क्यूकर बणै? जिसमैं मेवाती भी हो, जिसमें पंजाबी मिश्रित हरियाणवी-कित्थे जांदा, इत्थे जांदा भी हो। ऐसी भाषा अभी विकसित नहीं हुई। वह विकसित नहीं हुई तो आड़ै कितने ही नाटक करल्यो।

हरियाणा मैं बोल्ली की बात छोड़ दें एक गांव म्हं ही बोल्ली के अनेक रूप मिल जाते हैं। कई गाम हैं एक गाम म्हं। उसमें दबंग जातियां भी हैं। उसमें निचली जातियां भी हैं। सभी के डायलेक्ट अलग-अलग हैं। उसे कैसे समायोजित करें ताकि वह हरियाणवी का रूप ले सके। उसमें दलित समुदायों की बोलियों के मुख्य शब्द भी आएं। मेवाती भी आए। पंजाबी के असर वाली हरियाणवी भी आए। प्रेमचंद की हिंदुस्तानी की तरह हरियाणा में खड़ी बोली बणे, जोकि भविष्य में हरियाणवी हो जाए। नहीं तो रोहतकी को हरियाणवी कहने पर मुझे आपत्ति है।

बोली की दिक्कत अलग प्रकार की हैं। बोली को जब लिखते हैं तो उसमें अलग-अलग नियम हैं। बोली में कोमनिटी पैदा नहीं हुई। देवनागरी लिपि में हरियाणवी लिखने में अनेक प्रकार की चुनौतियां हैं। हरियाणवी में बहुत सी विविधता है। उसे एकरसता नहीं बनाया जाना चाहिए। रोहतकी को हरियाणवी बनाए जाने से नहीं चलेगा।

फेसबुक पर लिखकर रागणी डाल दी और एक किसी ने गाई तो वह डाल दी। अभी हरियाणवी सुणकै तो राजी सैं। पढ़ कै राजी ना सैं। खुद की लिखी हुई रागणी भी पढ़ने में दिक्कत आती है। ये मुश्किल जगहें हैं। इन्हें देखना होगा। यह तभी होगा जब हम आपस में विचार-विमर्श करेंपे। दिक्कत यह है कि एक दूसरे की बातों को विशेष तौर से माईनोरिटी ओपीनियन को एब्सोर्ब करने बर्दाशत करने की क्षमताएं खत्म हो गई हैं। दयानंद मठ में एक कार्यक्रम था। मैं चला गया। वहां चौधरी हंसराज की एक फोटो लगी हुई थी। वहां बताया गया कि जब रोहतक में जाट स्कूल शुरू हुआ तो चर्चा चल गई कि स्कूल में संस्कृत और हिंदी ही पढ़ाई जाए या अंग्रेजी भी। चौ. हंसराज ने कहा कि अंग्रेजी पढ़ाई जानी चाहिए और यह बात मानी गई। आज अल्पसंख्यक विचार को माने जाने की स्थितियां नहीं बची हैं। बड़ी जातियों में ही नहीं सभी जातियों में आईडेंटीटी पोलिटिक्स पैदा हो गई है। जो एक समूह से उभर कर आता है, उसकी चलती है। बाकी की सुनी नहीं जाती है। यह जगहें हैं जिन्हें देखना होगा। कैसे बहुविविधता के साथ हरियाणा कैसे अपनी रिफलैक्सन दे। यह बहुत कन्फ्यूजन हैं। संभव है समय बीतने के साथ हरियाणवी एक नेशनलिटी बने। नेशनलिटी के साथ ही भाषा बने। बोली के रूप में हरियाणवी के विकास के सभी प्रयासों के हम साथ हैं।

सुधीर शर्मा-

मैं हरियाणवी की पृष्ठभूमि पर कुछ कहना चाहूंगा। रोहतक की जाटू या बांगरू भाषा नहीं है। लेकिन इसकी एक पृष्ठभूमि है। अधिकतर सांगी उसी इलाके के रहे हैं। लखमीचंद, बाजे और धनपत हैं। वे पहले कलाकार या लोक कलाकार थे, जो हरियाणा की चार दिवारी के बाहर गए। इसलिए यह क्षेत्र डोमिनेट करने लगा। फिर रेडियो स्टेशन रोहतक में बना। फिल्मों की शुरूआत भी उसी इलाके से हुई। इस इलाके के लोग ज्यादा असर्टिव भी हैं। नतीजा यह हुआ कि बाहर और अंदर मान लिया गया कि जाटू भाषा ही हरियाणवी भाषा है। अब यह स्थिति बदल रही है। मैंने बताया कि माजिद ने मेवाती पर एक किताब लिखी है। उसे खूब पढ़ा जा रहा है। नाटक वाले व कविता वाले उसे पढ़ रहे हैं। बहुत सारा लोक साहित्य जो मेवात में है, अब उभर कर सामने आ रहा है। समस्याएं उनकी भी वही हैं, जो रोहतक में हैं। रोहतक में महिलाओं का गीत है-

मां-बापां नै जुल्म करे, मैं पढ़ेलिखे कै ब्याह दी हे
वो बोल्लें अंग्रेजी बोली, मेरी समझ मैं ना आती हे

मेवात की महिलाएं भी इसी तरह का गीत गाती हैं-

भाण मेरो बारम जेंटेलमैन, वो तो अंग्रेजी मैं बोलै।

भाषा में हेर-फेर है, लेकिन हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्र में मानसिकता एक सी है। तो निश्चिंत रहना चाहिए कि समय के साथ-साथ हरियाणवी एक ऑल-इंक्ल्यूसिव ऐसी समग्र भाषा बन पाएगी। लेकिन अभी शुरूआत है।

दूसरी बात डॉ. दहिया ने बहुत ही अच्छी कही है। बोलने-सुनने में तो ठीक है। लिखने-पढ़ने में दिक्कत आती है। कोई नहीं पढ़ता, यह भी बात ठीक है। हरएक भाषा का अपना एक रिदम होता है। हरियाणवी का अपना रिदम ऐसा है जो बोलने में ज्यादा प्रभाव डालता है। लिखने में नहीं। दुनिया भर के कितने चुटकुले हैं। किताबों में छप गए। लेकिन उन्हें पढ़कर लोग कोई ज्यादा प्रभावित नहीं होते या हंसते नहीं। लेकिन उसी चुटकुले को जब उस रिदम से उस भाषा में बोला जाता है तो लोग एंजवॉय करते हैं। यह इस भाषा के रिदम की विशेषता है। बहुत सी भाषाएं ऐसी हैं कि वे बोलने में अच्छी नहीं लगती। अंग्रेजी में कहते हैं सिंग-सोंग लैंगवेज। आं..आं..आं करके कोई बोल रहा है, कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा। लेकिन यहां का आदमी चाहे वह किसी भी क्षेत्र का हो। अहीरवाटी का हो या किसी भी क्षेत्र का हो। जब बोलता है तो बोलने में कई बार किसी चुटकुले को मैं हिंदी में सुनाता हूं तो कहते हैं कि अपनी भाषा में ही सुनाओ। भाषा को लोग ना भी समझें तो लबो लहज़े को पसंद करते हैं। मुझे वो चुटकुला भी याद है-

मेरासी के घर मैं चोरी होगी। वह पुलिस वाले के पास जाकर बोला कि मेरे घर में चोरी हो गई। पुलिस वाला बोल्या कि लिखवा। बोल्या जी लिखो-एक परात। थाणेदार बोल्या-और। व्यक्ति बोल्या-पहलां वा तो दिलवा दे। इसी चुटकुले को आप लिख दें। पढ़ने वाला इसे किल भी कर सकता है। इस बारे में निश्चिंत रहना चाहिए कि समय के साथ-साथ वह रिदम भी पकड़ लेगी। मैं आश्वासन यह भी दिलाना चाहता हूं और मानता हूं कि-

प्रेम का पहला खत लिखने में वक्त तो लगता है
नए परिंदे को उड़ने में वक्त तो लगता है।

अमन वाशिष्ठ-

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के लिंगविस्टक्स डिपार्टमेंट में प्रो. जे.डी. सिंह होते थे। रोहतक के पास भगवतीपुर गांव के थे। उन्होंने पूना कॉलेज के साथ किसी कोलेबोरेशन में एक बार एक ग्रामर लिखा था-ए डिस्क्रिप्टिव ग्रामर ऑफ बांगरू। यह

मानते हुए कि रोहतक के आस-पास के इलाके का कोई व्याकरण विकसित किया जाए। तो व्याकरण विकसित उन्होंने किया। हालांकि उस तरीके से वो हरियाणवी एकेडमिशियन में वह कितना पोपुलर रहा। उन्होंने कितना रिसीव किया, यह बाद की बात है। एक बड़ा स्टेंडर्ड का काम माना गया।

दूसरी बात यह कि जो एबसोल्यूट स्टेंडर्डाइजेशन है वह तेलुगु में भी नहीं है। तेलुगु के अंदर भी डायलेक्टस हैं। हैदराबाद और दक्षिणी आंध्र प्रदेश की भाषा की तेलुगु को यदि हम सुनेंगे तो उसमें भी इंटरनल डिफरेंसिस हैं। मद्रास के पास की तमिल और कोयंबटूर के पास की तमिल में फर्क है। इसी प्रकार मराठी भाषा के साथ है। तो एब्सोल्यूट स्टेंडर्डाइजेशन की कई बार हमें चाहत रहती है। वह चाहत ऐसी होती है जैसा प्रो. दहिया साहब ने जिक्र किया कि रिटन स्क्रिप्ट के लिए हमें स्टेंडर्डाइजेशन चाहिए। एब्सोल्यूट स्टेंडर्डाइजेशन तो संस्कृत के पास भी नहीं है। वैदिक मंत्र की संस्कृत तो वह संस्कृत है ही नहीं जो पुराण की संस्कृत है। बाद में पाणिनी ने हाथ पांव मारे और बहुत ही जबरदस्त तरीके से जबरदस्त काम प्रोड्यूस किया अष्टाध्यायी का। स्टेंडर्डाइज हो गया। लेकिन आज भी वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के बीच में कोई मिडल पाथ नहीं है। एब्सोल्यूट स्टैंडर्डाइजेशन नहीं हो पाया। मैं इस बारे में यह कहना चाहूंगा। प्रो. बी.डी. चट्टोपाध्याय ने एक साल पहले इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस में एक अच्छी बात कही-हमारे पूरे हिंदुस्तान में एक आईडिया बहुत हावी है। शायद नेहरु के कारण- यूनिटी इन डाइवर्सिटी। हमारी दृष्टि डाइवर्सिटी की बजाय यूनिटी की तरफ ज्यादा रहती है। हमारे अंदर एक जबरदस्त ललक है कि एक सूत्रता खोज लो। एक तार खोज लो। माला के मनकों के भीतर छुपा एक तार। सारी सृष्टि के अंदर छिपा एक ब्रह्म। वो जो एकत्व की यूनिटी की खोज है ना। स्टेंडर्डाइज करने की खोज है वह डाइवर्सिटी को सेलिब्रेट करने से रोक देती है।

प्रो. दहिया की इस बात से पूरी सहमति है कि डाइवर्सिटी सेलिब्रेट हो। अंबालवी भी सेलिब्रेट हो। मेवाती भी सेलिब्रेट हो। प्रो. सुधीर शर्मा को पहली बार जब मैंने रोहतक में सुना था। तो आपने जिक्र किया था कि हम तो सूरदास को भी अपना क्लेम नहीं कर पाए। वह तो फरीदाबाद के हैं। लेकिन अगर किसी मध्य भारत या दक्षिण भारत के किसी आदमी से पूछेंगे तो वह यही कहेगा कि होगा उत्तर प्रदेश का। क्योंकि उत्तर प्रदेश का आदमी ज्यादा काम करता है सूरदास पर। ज्योग्रफिकली तो सूरदास फरीदाबाद के सीही गांव के हैं। हमने उन्हें अपना क्लेम ही नहीं किया।

आखिरी बात यह कि हरियाणा की सारी धार्मिक व सारी लोक परंपराओं की प्रेरणा राजस्थान से है। गूगा पीर राजस्थान में है। खाटू श्याम राजस्थान में हैं। मेहंदीपुर बालाजी राजस्थान में है। सालासर राजस्थान में है। अब कल्चरल वह बाउंड्री नहीं बनेगी जो पोलिटिकली बनती है। राजनैतिक बाउंड्री तो खींच दी, उसके कुछ कारण होते हैं। लेकिन सांस्कृतिक बाउंड्री वह नहीं बनेगी। सांस्कृतिक सीमा तो बहुत अंदर चली जाएगी। सिरसा में रामदेव पीर को मानते हैं। रामदेव पीर तो राजस्थान में मिलेंगे। हरियाणा में नहीं मिलेंगे। लेकिन उनका सांस्कृतिक प्रभाव हरियाणा में भी मिल जाएगा। पाबूजी का भी मिल जाएगा और गूगा पीर के तो क्या कहने। ज्योग्रेफी पर हमें ज्यादा जोर देने की जरूरत नहीं है। सांस्कृतिक बाउंड्री और राजनैतिक बाउंड्री को हमें अलग-अलग देखना होगा। राजनैतिक सीमाएं कागज पर बनी हैं, सांस्कृतिक सीमाएं हजारों साल के इवोल्यूशन के बाद बनी हैं।

नवरत्न पांडे-

सीधी पाधरी सी बात है कि सामान्य सा दृष्टिपात यदि हम करें तो अब तक हम बुजुर्गों द्वारा किए गए काम को इकट्ठा करने में लगे रहे। कोई लोकोक्ति इकट्ठी कर ली। मुहावरे इकट्ठे कर लिए। लोककथाएं-लोकगाथाएं इकट्ठी कर ली। पं. लखमीचंद की रागनियों पर किसी ने काम कर लिया। अब सही मायने में जरूरत दो चीजों की है। एक तो मौलिक काम करने की जरूरत है। मौलिक काम करने के लिए गांव-गांव में अस्सी साल का बूढ़ा-बूढ़ी जो बचे हुए हैं। उनके पास बैठ कर दो-चार दस मिनट बात पूछने की जरूरत है। नहीं तो वे उन बातों को अपने साथ लेकर चले जाएंगे और हमारे हाथ कुछ नहीं लगेगा।

मैं एक-दो चीजें यहां विशेष रूप से कहना चहता हूं। क्योंकि पिछले बीस साल से स्कूली छात्रों में नाटक व स्टेज को लेकर हम वहां लोकल-नुक्कड़ करते हैं। उसमें मुझे जो दिक्कत आती है। हम खेमों में बंटे हुए हैं। यदि मेरे पास बढिया़ आर्टिस्ट है - छठी या सातवीं कक्षा का बच्चा है तो अव्वल तो उसकी दो पोजीशन आते ही उसे प्राइवेट स्कूल वाला खींच कर ले जाएगा। प्राइवेट स्कूल में उसे सबसे पहले यही बात कही जाती है कि हरियाणवी नहीं बोलनी है। वहां तो वह हिंदी भी नहीं बोलने देता। स्थिति यह निकल कर आती है कि

11वीं-12वीं के बाद जब बच्चे को यह पता चलता है कि उसे अपनी बोली का ज्ञान क्यों नहीं है। उसको अपनी खेती-बाड़ी के राछ का पता क्यों नहीं है। कोलड़ी, गंडस्या क्या होती है। हिंडी आळा गिलास के है? बेलचा के है? इन चीजों का उखळ-मूसळ क्या है जब उसे नहीं पाता होता तो वास्तव में उस समय बहुत देर हो चुकी होती है। उसे क्या दिक्कत आती है कि जब वह किसी कार्यक्रम में जाता है तो पोळी को पोली बालता है। ऐसे में ना उसे ढ़ंग से अंग्रेजी आती, ना हिंदी और ना हरियाणवी। विद्यालय स्तर पर कुछ ऐसा साज-संभालने की जरूरत है। वह तब हो पाएगा जब हम हरियाणवी बोली को गलैमराईज करेंगे। चीजें ग्लैमराइज तब होती हैं जब उसकी धूळ झाड़ करके उसमें जो डार्क शेड्स हैं और धूसरपन को झाड़ पोंछ कर जब सुंदर तरीके से उसे प्रस्तुत किया जाएगा। आज हालत यह भी है कि जब बैंजो और घड़वे पर लखमीचंद की रागणी गाई जाती है तो गांव छोड़ कर शहर में रहे लोगों को भी उसे समझने में टाइम लग जाता है। उसे झाड़-पोंछ कर सुसंस्कृत रूप देकर प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

हमें ना जाने किस बात का कंपलैक्स है। पहल हमारी हिंदी ही रहती है। हंस में छपना या ज्ञानोदय में छपना या कथादेश में छपना आज भी हरियाणा के ही साहित्य जगत में साहित्यकारों के बीच बड़ी बात मानी जाती है। हरिगंधा में या देस हरियाणा में कोई हरियाणवी कहानी छपती है तो उसे हल्के में लिया जा रहा है। बोली में लिखना जब गर्व की बात मानी जाएगी तो मुझे लगता है कि हमारी बोली के विकास के लिए कुछ अच्छा हो सकता है।

मुझे याद है कि एक बार बड़े प्राइवेट स्कूल के टूर के दौरान किसी दूसरे राज्य में कल्चरल एक्सचेंज का कोई कार्यक्रम था। संकोचशील एक बच्चा वहां से अपने घर मां को फोन करता है कि यहां कंपीटीशन है और उसे पोईम बोलनी है-अंग्रेजी, हिन्दी और हरियाणवी में। उन्होंने मुझसे सम्पर्क किया तो मैंने कहा कि हरियाणवी में बोलो। उन्होंने कहा कि पिच बिगड़ जाएगी। हरियाणवी बोली में कविता बोलने से अभी तक तो पिच बिगड़ रही है। यह बहुत शोकिंग था। बाद में वह कविता उसने बोली-

गोबर की सांझी, मीठे-मीठे गीत
म्हारी पोळी की कच्ची भीत
ताई के हाथ का लाल-लाल सीत
गूगा की धोक भईयां की रीत
भागण का खेल आज फेर याद आग्या
एक भूंडा सा शहर मेरे गाम नै खाग्या

यह कविता खूब चर्चित हुई तो फोन आए कि बच्चे ने बहुत अच्छा बोला। हरियाणवी की बहुत तारीफ हुई। सारी चीजें हमारे पास हैं। उन्हें अच्छे तरीके से परोसने की जरूरत है।

सोशल मीडिया ने हमारे सारे के सारे चुटकुलों का भट्ठा बिठा दिया। फेसबुक पर बढ़िया-बढ़िया रागनी शब्दों का मर्म नहीं खोती जा रही है। चाला और चाळा का अंतर ही समझ नहीं आ रहा है आज की पीढ़ी को। चाळा बोलने में ही उसका मज़ा था। लोकल स्तर पर जो नाटक होता है तो बात वहीं की वहीं है। देस हरियाणा में धर्मेन्द्र कंवारी की कविता मैं देख रहा था। आज समसामयिक संदर्भ में भी कविता के पात्र या नाटक के मुख्य किरदार का नाम मोल्लड़ धरर्या है। उसका मोल्लड़ नाम ना धरो। उसे गणपत कह द्यो, हवा सिंह कह दो, उसे नवरत्न कह दो। हम आज भी चाळीस साल पहले के नाम व पात्र लेकर आ रहे हैं। आज की जनरेशन की साईकी को पकड़ें तो उसे दिक्कत होती है। हम बारीकी में जाएंगे तो काम चलेगा। लेखन में बढ़िया-बढ़िया से प्रयास किए जा रहे हैं। खूब सारे लोग लेखन में हैं। काम निश्चित तौर पर हो रहा है। और भी सुंदर तरीके से होगा। चार पंक्तियों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं-

नए घर में पुरानी चीजों को कौन रखता है
अपनी छत पर कुंदों में पानी कौन रखता है
वो हम ही तो हैं जो संभालेंगे बिखरी हुई चीजें
वरना तो घर में बुजुर्गों की निशानी कौन रखता है।

डा. रणबीर सिंह दहिया-

हरियाणा में सेक्यूलर चुटकुले नहीं मिलते। हरियाणा में चुटकुले टोह-टोह कै मैं छक लिया। हरियाणा में चुटकुले एंटी दलित हैं, एंटी वूमैन हैं। सेक्यूलर चुटकुले टोहणा हरियाणवी को बचाने का बड़ा काम होगा।

अमन वाशिष्ठ-

हरियाणवी लेखन करने वाली हमसे जो पहले की पीढ़ी की तुलना में हमें एक एडवांटेज है। हम जिस ऐज में आए, हमें इंटरनेट मिला। हम इंफरमेशन की डेफिशियेंसी में नहीं हैं। हमारे साथ सुविधा यह है। मुझे 1881 में यदि किसी गांव की एक जाति की जमीन का प्रपोर्शन देखना है तो मेरे सामने एक क्लिक पर आर्काइव्स के अंदर। अब सूचना की बहुत कमी में नहीं जीता मैं। यह बात सही है कि मौखिक परंपरा के अंदर चीजों को डोक्यूमेंट करने की जरूरत है। मेरी जानकारी में इस दिशा में हरियाणा में जो सबसे बड़ा काम किया या तो आर.सी. टैंपल ने किया। उसके बाद शंकर लाल यादव ने किया। उसके अलावा बहुत सारा मैटीरियल फोरन यूनिवर्सिटीज ने ब्रिटिश लाईब्रेरी के सहयोग से इंटरनेट पर डाल दिया। जो एक मिसिंग लिंक था, वह एक हद तक भरा है। आगे मिज़ाज और बदलेगा। हमारे बीच की जो पीढ़ी थी, जो हिस्ट्री के एकेडमिशियन हैं, उनकी बात अलग है। उनके पास आर्काईव्स की एक्सेस थी। अब हमें भी आर्काइव्स की फ्री में एक्सेस है। मुझे यह पढ़ना है कि पेशावर से पलवल के बीच का जनजीवन कैसा था। वैल्कम डार्लिंग, जो उस समय ब्रिटिश ऑफिसर थे, उनकी डायरियां एक क्लिक पर उपलब्ध हैं। तो वो जो मिसिंग लिंक था। सारा मिसिंग लिंक इंटरनेट ने एक झटके से उपलब्ध करवा दिया। अब वो मिसिंग लिंक की बाधा मेरे साथ नहीं है। अभी तो मिज़ाज बदल गया। आगे जब ये चीजें लोगों के पास पहुंचेंगी तो आगे और भी मिज़ाज बदलेगा। क्योंकि बीच का दौर सूचनाओं की कमी थी। अब इंटरनेट से सारी चीजें लोगों तक आएंगी। जब युवा स्कॉलर तक सारी चीजें पहुंचेंगी तो और भी बदलाव आने बाकी हैं।

डा. अशोक भाटिया-

विषय था हरियाणवी लेखन का बदलता मिज़ाज। सारे के सारे उदाहरण जो यहां दिए गए सभी कविता से संबंधित थे और वो भी लोक साहित्य से जुड़े हुए दिए गए। सुभाष जी ने एक बात कही थी कि भाषा में निखार गद्य से आता है। हरियाणवी

लेखन में गद्य कहां है। हरिगंधा व देस हरियाणा में आता है। अच्छी बात है। सवाल यह है कि हंस, कथादेश, वर्तमान साहित्य आदि पत्रिकाओं में जिस तरह का गद्य आ रहा है। हरियाणवी में वह गद्य क्यों नहीं है।

दूसरी बात यह कि लखमीचंद व मांगे राम का जिक्र हम खूब करते हैं। अच्छी बात है। लेकिन नया लेखन कहां से आए। बुजुर्गों के पास बैठिये बहुत अच्छी बात है। लेकिन हरियाणा की प्रतिभा नई समस्याओं को आज के जमाने को अपने लेखन में कब उतारेगी। आज भी यदि हम उसी तरह पुरानी चीजें लिखेंगे तो फिर आज के समाज में उसकी स्वीकृति किस तरह से होगी।

तीसरा सवाल यह है कि हम लोकगीतों की बात करते हैं। लोकगीत वो होते हैं जिसका रचनाकार हमारे पास नहीं होता। लोकगीत पीढ़ी दर पीढ़ी नदी के पत्थर की तरह चलते जाते हैं। घिसते जाते हैं और सर्व स्वीकृति के रूप में हमारे सामने आते हैं। लेकिन हम लखमीचंद के गीतों को लोकगीत कहते हैं। हम मांगे राम के गीतों को लोकगीत कहते हैं। मेरे विचार से वे लोकगीत नहीं हैं, बल्कि लोकप्रिय गीत हैं।

मंगत राम शास्त्री–

डा. दहिया कह रहे हैं कि जनतांत्रिक चुटकुले हरियाणा में नहीं हैं। ऐसी बात नहीं है। 1994-95 में जब हम ज्ञान सत्ता निकालते थे। तो हम हर एक अंक में चुटकुले देते थे। सत्तर चुटकुले मेरे पास हैं, जो ना तो महिलाओं पर हैं और ना ही किसी कास्ट पर हैं। बस यह है कि वह अंदाज है हरियाणवी बोली का। कहने का तरीका है। इसलिए वो लिखे हुए और कहने में फर्क है। जैसे उदाहरण के तौर पर मैं कह सकता हूँ–

एक बूढ़ा बैठा था। मेरे जैसा चल्या गया।
बोल्या-ताऊ ठीक ठाक?
बोल्या-हां ठीक-ठाक।
अक कैं छोरे हैं।
अक दो हैं।
के लाग रे हैं?
कि भाई डाक्टर लाग रे सैं।
क्यां के डाक्टर हैं?
बोल्या-न्यूं तो मनैं बेरा नीं अक क्यां के डाक्टर हैं पर जब मैं उन्हें कहूं नी। वें कहैं से-के बिमारी है?

अब इसको लिख दो। इसका के अर्थ लिकड़ैगा। के चुटकुला बणैगा लिखाई म्हं। इसका जो कहणे का अंदाज है। इसनै या चुटकुला बणा दिया।

दूसरी बात यह कि सर्टिफिकेट की भी जो बात थी। सर्टिफिकेट हासिल करना नाटक व साहित्य का उद्देश्य नहीं हो सकता। सर्टिफिकेट की भी जहां तक बात है। 2014 में रत्नावली कार्यक्रम में मेरे बेटे ने मेरी लंबी कविता-वें दिन आवैं याद मेरै बोली। सत्तर प्रतिभागियों में वह कविता संयोग से प्रथम आई। जिसका एम.ए. अंग्रेजी में दाखिला लेने में उसे लाभ मिला।

तीसरी बात नाटक पर जो बहस थी। काफी दबाव से मैं यह बात कह रहा हूँ। सींग जाम ज्यां अच्छी बात है। सींग होने चाहिएं। सींग जामण तै पहल्यां ही उन्हें खत्म कर दे। तळ दे। या सबसे बड़ी बात है। सींग जामैं और वें टकरावैं। यह जरूर होना चाहिए।

लेकिन अपणे हरियाणा में एक और बात है। पुराणे आदमी कहदें सुणे सैं भई सर्पिणी अपणे जाम्ये होए नै भी खाले हैं कई बार। मुझे कई बार यह अंदेशा होता है। मैं डर जाता हूं कई बार कि कहीं हरियाणा का कल्चर, जो इस एरिया में काम है। हम कहीं सर्पिणी ना बन जाएं। बनते दिखाई देते हैं मुझे। भय होता है। इसलिए पोषण ज्यादा जरूरी है। पोषण नहीं हो रहा उसका।

अशोक वाशिष्ठ-

हरियाणा में हिंदी साहित्य को यदि छुआ जाए तो वह अपने आप में अपूर्ण है। मैं वरिष्ठ कवियों-लेखकों की बातें सुन रहा था। मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ। उन्होंने उस समय के हरियाणवी लेखकों को छुआ ही नहीं जब हरियाणा बना ही नहीं था। आपको शायद मालूम नहीं होगा कि जब हरियाणा बना ही नहीं था तो बना कैसे। यह भी हरियाणवी कवियों-लेखकों से ही जाना जा सकता है। इसकी नींव रखने में उन हरियाणवी लेखकों-कवियों का ही योगदान रहा है, जिन्होंने हरियाणा को पहचान दी है। उसकी कमिस्ट्री तैयार की है, ज्योग्राफी तैयार की है। दूसरी बात और आश्चर्यजनक बता रहा हूं कि उतना हरियाणवी साहित्य हरियाणा बनने के बाद नहीं लिखा गया, जितना हरियाणा बनने से पूर्व लिखा गया है। अगर आप जन साहित्य उठा कर देखिए। आप सप्तसिंधू उठा कर देखिए। हरियाणा की बात कर रहे हैं। हरियाणवी बोली की बात कर रहे हैं। जब हरियाणा बना ही नहीं था, तब भी हरियाणवी बोली को भाषा में परिवर्तित करने के लिए व्याकरण तैयार किया जा रहा था। महम से ही डॉ. नानक चंद शर्मा, जो हरियाणवी लिखते और पढ़ते हैं, ऐसे लेखकों को यदि नहीं छूएगा तो मैं समझता हूं कि उन्हें हरियाणवी के बारे में ज्यादा ज्ञान नहीं है।

यशपाल शर्मा–

जिन्होंने जितना कुछ किया है, पहले उसको तो सलाम कर लो। जो नहीं किया हम उसके पीछे क्यों भाग रहे हैं। इसलिए हम पचास साल से आगे बढ़ ही नहीं रहे हैं। जो कुछ कर रहा है, हम उसे रेस्पेक्ट दे ही नहीं पा रहे हैं। हम कब बाहर निकलेंगे इन चीजों से। यह अच्छी बात नहीं है। पचास सालों से यही चल रहा है। यदि किसी की नुक्कड़ नाटक में मास्टरी है तो वी शुड सेल्यूट देम। अगर कोई ब्रख्तियन या ग्राटोवस्की थियोरी में कोई नाटक कर रहे हैं या फिल्में कर रहे हैं। किसी को रेस्पेक्ट देने में जाता क्या है। नफरत करना छोड़ दो। दूसरों को सम्मान देते हुए अपनी भी बात कहो।

प्रो. सुधीर शर्मा–

यह नया अंदाज़ है। यह सब बातें होंगी जो आप सोच रहे हैं कि होनी चाहिएं। दूसरी बात यह है कि उपन्यास आदि का हमने जानबूझ कर जिक्र नहीं किया। उपन्यास भी लिखे जा रहे हैं। यह अपने आप में विस्तृत विषय है कि इस पर अलग से भी सेमिनार हो सकता है। तीसरी बात यह है कि जितना है उसे संभालें। आपकी शिकायत कि नानक चंद, जिन्होंने हरियाणवी गीता लिखी है। जिन्होंने रामायण लिखी है, उनको भी। अब भी जो नई बातें आ रही हैं। उस पर भी लोग लिख रहे हैं। मैं दो उदाहरण लेता हूं। एक सांगी ने लिखा है–

रूप कला तेरा रूप देख मेरे जी नै रासा हो गया।
तू मिसरी की डळी-डळी, मैं खांड पतासा हो गया।

रासा, खांड, पतासा आदि ऐसी उपमाएं हैं जोकि आज के श्रोता को समझ में नहीं आएंगी।

रामकिशन व्यास ने जो लिखा है वह यूं–

रूप कला तेरा रूप देख आस जीण की छूट गई
तेरी दो आंख्यां की गोल पूतली रामकिशन नै शूट गई

यह फौज का प्रभाव है। एक और उदाहरण है–

बारह बरस तेरी भैंस चराई
पां पड़वा लिए पाळी बण कै
परले पार लिकड़ गई
हीरे लो की रफल दुनाळी बण कै

ऐसा नहीं है कि समसामयिक घटनाओं का प्रभाव नहीं पड़ता। जैसा कि यशपाल शर्मा ने कहा कि जो भी हमारे पास है, उसे सम्मान की नजर से देखा जाना चहिए।

सम्पर्क-9466220145

विरासत

गरीबदास

कबीर परम्परा के संत कवि गरीब दास (संवत 1774 से 1835) हरियाणा के झज्जर जिले के छुड़ानी गांव में हुए। 'ग्रंथ साहब' में इनके लगभग 18000 पद संकलित हैं। संतों ने अपनी वाणियों में अपने समाज को व्यक्त किया। संतों की वाणी में व्यक्त आध्यात्मिकता की तो पर्याप्त चर्चा हुई, लेकिन भौतिक जगत का सत्य पूरी तरह विचार-विमर्श का हिस्सा नहीं बना। 'अन्नदेव की छोटी आरती' कविता में अन्न को प्रमुखता दी गई है। जिसमें भक्ति और रहस्यवाद का गुंजलक नहीं है, बल्कि मानव जीवन के आधार अन्न की महिमा गाई है।

अन्नदेव की छोटी आरती

आरती अन्नदेव तुम्हारी, जासे काया पले हमारी।
रोटी आदि रोटी अंत, रोटी ही कुं गावें संत।।
रोटी मध्य सिद्धि सब साध, रोटी देवा अगम अगाध।
रोटी ही के बाजें तूर, रोटी अनंत लोक भरपूर।।
रोटी ही के राटारम्भ, रोटी ही के हैं रण खम्भ।
रावण मांगन गया चून, तांते लंक भई बेरून।।
मांडी बाजी खेले जूवा, रोटी ही पर कैरो पांडो मूवा।
रोटी पूजा आत्म देव, रोटी ही परमात्मा सेव।।
रोटी ही के हैं सब रंग, रोटी बिना न जीते जंग।
रोटी मांगी गोरखनाथ, रोटी बिना न चले जमात।।
रोटी कृष्ण देव कुं पाई, सहंस अठासी की खुध्या मिटाई।
तंदुल विप्र कुं दिये देख, रची सुदामापुरी आलेख।।
अधीन विदुर के भोजन पाई, कौरव बूड़े मान वडाई।
मान बडाई से है दूर, अजिज के है सदा हजूर।।
बूक बाकला दिए विचार, भया चक्कवै कई इक बार।
वीट्ठल होकर रोटी पाई, नामदेव की कला बधाई।।
धना भक्त कुं दीया बीज, जा का खेत निपाया रीझ।
द्रुपद – सुता कुं दीया लीर, जा के अनंत बढ़ाये चीर।।
रोटी चार भार्या घाली, नरसीला की हुंडी झाली।
सांवल शाह सदा का सही, जाकी हुंडी तत पर लई।।
जढ़ कुं दूध पिलाया जान, पूजा खाये गए पाषाण।
बलि कुं यज्ञ रची अश्वमेघ, बावन होकर आए उमेद।।

हरियाणा में ललित कलाएं

चुनौतियां एवं संभावनाएं

☐प्रस्तुति-गुंजन कैहरबा

हरियाणा सृजन उत्सव में 26 फरवरी 2017 को 'हरियाणा में ललित कलाएं : चुनौतियां एवं संभावनाएं' विषय पर परिसंवाद में प्रो. रामविरंजन तथा शक्तिसिंह अहलावत ने हिस्सा लिया। इस सत्र का संचालन डा. पवन कुमार ने किया। इसमें ललित कलाओं से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचारोत्तेजक बहस हुई जो यहां प्रस्तुत है – सं.

पवन कुमार: बहुत सारे विद्वान जन यहां पर बैठे हैं। सब लोग जानते हैं कि हरियाणा में लेखन कला से जितनी दूरी है ललित कलाओं से उससे भी अधिक दूरी है। इसके पीछे के कारणों को हमने जानना है और दूर करना है।

लोक कलाएं हैं, लोक विषय हैं, लिखने में या बोलने में या अभिनय में या किसी भी विधा में उन विषयों को हमें आमजन तक लेकर जाना है जिससे हमारी संस्कृति को और बल मिले। संवाद को ज्यादा ना बढ़ाते हुए प्रो. रामविरंजन जी को आमंत्रित कर रहा हूं।

प्रो. रामविरंजन : हम हरियाणा में सबसे हाशिए पर रहते हैं। और अल्पसंख्यक प्राणी हैं। आप इस सभागार में देखिए चार-पांच लोग मुश्किल से होंगे। हमारी ये दशा है हरियाणा में। आप ये समझ सकते हैं। इतना विकसित राज्य, जहां लेखन की परम्परा है, जहां कृषि की इतनी समृद्ध परंपरा है। और ललित कला के क्षेत्र में इतना पिछड़ा हुआ है। हमें आश्चर्य होता है कि ऐसी स्थितियां क्यों बनी हुई हैं। चाहे सरकार तंत्र की ओर से चाहे एजुकेशन की ओर से ले लीजिए, या संस्थाएं तो आगे आकर काम करें उनका बहुत आभार है सबने हमें इगनोर किया है।

इस फील्ड में आने वाले कलाकार हैं उनके लिए बड़ी चुनौतियां हैं। हमारे विषय में संसाधनों की जरूरत होती है। कैनवेस चाहिए, कलर चाहिए उसके लिए पैसा चाहिए, बच्चों को पैसा चाहिए पढ़ने के लिए। उसके पास होता नहीं उसे वो छोड़ देता है। हम कुछ ऐसा सबजैक्ट पढेंगे कि जिससे नौकरी मिल जाए। जिससे हमारी आजीविका चलने लगे। तो हमारे पास सरवाईव करने के लिए बड़ा जंजाल है।

हरियाणा सरकार ने पिछले कुछ समय से कला गतिविधियां बढ़ाई हैं। लेकिन वो कला गतिविधियां केवल ड्रामा और रागनी के लिए हैं। हमारे यहां एक मल्टी आर्ट कल्चर सेंटर है। लेकिन वो हमारे लिए कुछ नहीं करता है। वो केवल ड्रामा कर देगा या रागनी। हमें उनसे बैर नहीं है। लेकिन हमको भी छुईए ना। हमारे बच्चों ने क्या अपराध किया है। उनको नहीं छुआ जाता है। हमको क्यों एक स्कोलरशिप नहीं दी जा रही है हरियाणा स्टेट की तरफ से। उनको क्यों संसाधन नहीं दिए जा रहे हैं ताकि वे अपनी क्रियेटिविटी बढ़ा सकें।

यहां के बड़े कलाकार हरियाणा छोड़ कर जा रहे हैं। मैं बहुत सारे ऐसे कलाकारों को जानता हूं जो यहां से पढ़े-लिखे हैं। चंडीगढ़ आर्ट कॉलेज में पढ़े हैं, मुंबई में पढ़े हैं। शांति निकेतन में पढ़े हैं और हरियाणा छोड़ कर चले गए हैं। क्यों? क्योंकि उनके सरवाईवल का यहां कोई तरीका नहीं है। हरियाणा सरकार जितनी कलाकृतियां खरीदती है, वह हरियाणा के कलाकारों से नहीं खरीदती है। वह चंडीगढ़ व दिल्ली से खरीद लाती है। आप भी जब आर्ट गैलरी तो आप दिल्ली से खरीद लाते हैं, मुंबई से खरीद लाते हैं। अरे हमारे यहां रोहतक, करनाल, कुरुक्षेत्र व पंचकूला के आर्टटिस्ट हैं, वो कैसे सरवाईव करेंगे।

हमारे पास जो समस्याएं हैं, उन्हें सुलझाने वाला कोई नहीं है, ना सरकार है और ना संस्थाएं हैं। हम जो कुछ कर रहे हैं, वह अपने बल पर कर रहे हैं। जिनके पास जोब नहीं है, उनको सरवाइव करना बहुत मुश्किल होता है। सारे शक्ति सिंह जैसे आर्टिस्ट नहीं हैं, जो पोरट्रेट के बल पर अपनी आजीविका चला सकते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो पोरट्रेट नहीं करते हैं। जो अपने मन की बात आर्ट में करते हैं। उनकी आर्ट कौन खरीदेगा।

इसलिए मेरा आग्रह है, सरकार से भी, संस्थाओं से भी और आम लोगों से भी कि आप थोड़ा कला को बढ़ावा देने के लिए हमारी भी मदद करें। जहां भी कला प्रदर्शनियां लगती हैं, वहां जाएं। जो भी थोड़ा पैसा से हमारे बच्चों को मदद करें। कुछ पेंटिंग खरीदें उनसे। उनके प्रोत्साहन के लिए कुछ करें। तो मुझे लगता है कि हरियाणवी कला का विस्तार होगा। कुछ जो गिने चुने आर्टिस्ट हैं, जिन्होंने नेशनल पैटर्न पर अपने आप को इस्टेबलिश कर लिया है, उनके लिए तो बहुत मुश्किलें नहीं हैं। वे बाहर जाते हैं, अपनी एक्जीबीशन लगाते हैं और कुछ कमा लाते हैं। जो बच्चा इस फील्ड में आ रहा है, उनके लिए बहुत मुश्किलें हैं। बहुत से बच्चे गरीब परिवारों से आते हैं, वे बीच में छोड़ कर चले जाते हैं, हमारे विश्वविद्यालयों से।

हरियाणवी कला के विकास के लिए अभी शुरूआत है। इसे आगे ले जाने के लिए बहुत लोगों की मदद की जरूरत है। जब तक यह मदद नहीं मिलेगा, बच्चों को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। तब तक इसका

विकास बहुत मुश्किल लगता है।

मैं कमाल की बात यह बताना चाहता हूं आपको कि हरियाणा संस्कृति विभाग है यहां पर। और पचासों सालों से किसी भी आर्टिस्ट को कोई पुरस्कार नहीं देता है। यहां के आर्टिस्ट नेशनल अवार्ड ले जाते हैं। लेकिन हरियाणा का कोई स्टेट अवार्ड उन्हें कभी नहीं मिलता है। हमारे विभाग में बहुत से ऐसे टीचर्स हैं, जो नेशनल अवार्ड लिए बैठे हुए हैं। लेकिन हरियाणा में उनको कोई पूछने वाला नहीं है।

जहां तक कला रचना की बात है। हरियाणा में कहते हैं - पनघट पर पानी भरती महिलाएं हैं, किसान हैं वही बनाओ। मुझे इससे विरोध है। हरियाणा में पचास साल पहले जो कलाकृतियां बनती थी, आज भी मैं वही करुंगा तो मैं आज का समाज कब पेंट करुंगा।

हम धरोहर म्यूजियम बना रहे थे। जब कोई कलैक्शन करना होता हमें वहां ले जाते। मैंने कहा कि हमें अंबाला भी ले चलो। बृज में ले चलो। आप धरोहर में जाइये तो बहुत सारा जींद एरिया का बहुत कुछ है। लेकिन आपको पंजाब का फ्लेवर कम मिलेगा। जो ब्रज का फ्लेवर कम मिलेगा। आर्ट में भी ऐसा ही है। जब हरियाणवी आर्टिस्ट को कोई पूछता है तो हरियाणवी के नाम पर घड़े और दरवाजे से झांकती औरत दिखाई देती है। यदि हम आज अपने समाज को और उनकी भावनाओं को पेंट नहीं करेंगे तो हम पनघट पर औरत पेंट करते रहेंगे।

आप केवल यह नहीं कर सकते कि गांव व देहात का सीन बना लीजिए और आप आर्टिस्ट हो गए। आर्टिस्ट भी एक चिंतक है। उसको भी समाज को देना होता है। समाज को वही देगा जो आप देखेंगे। मैंने गांव नहीं देखा है तो मैं गांव कैसे पेंट करुंगा। किसी ने शहर नहीं देखा है तो शहर कैसे पेंट करेगा। जो जिस ऐरिया में रहता है, वह अपने एरिया को पेंट करे। ऐसे भी कलाकार हैं जो गांव में रहते हैं, वे गांव को पेंट करें, इसमें दिक्कत नहीं है। लेकिन सबके लिए एक रास्ता बना दिया जाए कि आप यही पेंट करेंगे तब आप हरियाणवी कलाकार हैं। इससे परे आप जाएंगे तो आपको कोई नहीं पूछेगा। हरियाणवी आर्टिस्ट साहित्यकारों से नाटककारों व संगीतकारों से सबसे निकृष्ट श्रेणी में है। चित्रकार के लिए बहुत ही कम मंच हैं।

पवन कुमारः ललित कलाकार के लिए बहुत सीमित सा एक दायरा है। समाज के अंदर भी। अगर हम हरियाणा के हिसाब से बात करें तो हम खुलकर पेंटिंग नहीं बना सकते हैं। आप अगर पौराणिक कलाकृतियों को देखें। खजुराहो में बहुत सारे मंदिर हैं एक ही जगह पर। अगर आपने वहां पर विजिट किया होगा, तो वहां पर जो कलाकृतियां बनाई गई हैं। अगर उन कलाकृतियों को हरियाणा में पेंट करने की सोचें तो बहुत ही मुश्किल है।

कलाकार की अपनी अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति की आजादी है। उसमें कोई किसी विधा को किस तरीके से प्रस्तुत करता है तो कोई किस तरह से प्रस्तुत करता है। उस विधा में उनके विषय भी अलग-अलग हो सकते हैं। हो सकता है वह सामने वाले के विषय के मुताबिक अपने चित्र तैयार ना कर रहा हो। ऐसा होता है। यह जरूरी भी है, समाज के विकास के लिए। यदि हमारे विचार भिन्न नहीं होंगे तो हर एक पहलू पर चर्चा नहीं हो पाएगी। हर एक पहलू को छेड़ना बहुत जरूरी है।

शक्ति सिंह अहलावतः दो-तीन चुनौतियां हमारे इस फील्ड में हैं। सबसे पहली चुनौती तो खुद बच्चे के पेरेंटस ही पैदा कर देते हैं। उनको यह लगता है कि ललित कला तो एक हॉबी है। इसमें आप कमाओगे क्या। सबसे बड़ी चुनौती है यह कि पेरेंटस अपने बच्चे को इस लाईन में नहीं आने देते। कई बच्चे मेरे पास आकर बात करते हैं कि हम भी इस फील्ड में आना चाहते हैं, लेकिन हमारे पेरेंटस कहते हैं कि यह कोई ढ़ंग का विषय नहीं है, इसमें तुम कुछ नहीं बन पाओगे। एवेयरनेस की जरूरत है। हमें लोगों को शिक्षित करना पड़ेगा इस मामले में।

दूसरा, हम एक सीमित दायरे में रहना चाहते हैं, उस दायरे को तोडऩा ही नहीं चाहते और उसको हम परंपरा का नाम भी दे देते हैं। जैसे हमेशा कहा जाता है - यह तो हमारे खानदान में हुआ ही नहीं। ऐसा तो हमारे खानदान में किसी ने नहीं किया, तुम क्यों करोगे। यह कुछ बातें ऐसी हैं, जो हमें फाईन आर्टस के फील्ड में काम करने से रोकती हैं। यह चुनौतियां हैं हमारी। संभावनाएं भी बहुत हैं।

यह भी एक तरह की भाषा है। जैसे आप लोग लिख कर अपने आप को व्यक्त करते हैं, हम पेंट करके या ड्रॉ करके अपने आप को एक्सप्रेस करते हैं। लेकिन हमारे यहां पर, खासकर हरियाणा में इस चीज को समझा नहीं गया कि यह भी एक बहुत बड़ा माध्यम है। एक्सप्लोर किया जा सकता है इसको।

पवन कुमारः अब हम इस सैशन के आखिरी पड़ाव पर हैं। मुझे लगता है कि यह सबके लिए नया विषय रहा होगा। मन में बहुत से विचार उत्पन्न हो रहे होंगे। आप आमंत्रित हैं यदि आप पैनल से कुछ पूछना चाहते हैं। आप सभी आमंत्रित हैं।

उषा मजूमदार : आपने कहा कि पेरेंटस ही हतोत्साहित करते हैं। मैं पढ़ा रही हूं तो मुझे बहुत तकलीफ होती है। पेरेंटस हमें ही कह देते हैं कि जाओ हमें अपने बच्चे को आर्टिस्ट थोड़ी ना बनाणा है। आपको एक किताब दे राखी है। वो पढ़ा दयो। इससे ज्यादा मत कराना। मेरा सवाल यह है कि हम क्या जवाब दें। कई बार हम जवाब दे भी देते हैं और कई बार नहीं भी दे पाते हैं। जब आर्ट का कोई कंपीटीशन होगा तो वे यह बोलेंगे कि आपने तो अच्छे से नहीं सिखाया मैडम जी। बच्चे का कोई प्राईज भी नहीं आया। दोनों तरफ की बातें होती हैं तो बहुत मुश्किल हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में हम क्या जवाब दें कि उन्हें संतुष्ट किया जा सके।

शक्ति सिंह अहलावतःजो इस फील्ड में कहीं पहुंच गए हैं, उन लोगों का उदाहरण दे सकते हैं। कि वो भी आपकी तरह से यहीं से शुरू हुए थे और यहां पहुंच गए। इस तरह से उन्होंने अपना नाम बनाया और वह हमेशा रहेगा। कितने ही नाम हैं। एम.एफ. हुसैन यदि अपने देश में समझा जाए तो उनका नाम आप ले दो।

यशपाल शर्माः फिर वो बोलेंगे कि उनको भी अपना देश छोडऩा पड़ गया था। हमको भी छोडऩा पड़ेगा।

रामविरंजन : वह चीजें तो अपने आप में जुड़ी होती हैं। यदि हमें अपना सही रूप एक्सप्रेस करना पड़े तो हमें भी यही दिक्कतें आएंगी।

यशपाल शर्मा : जिसमें तकलीफ ना हो वो कला क्या है। आपकी बात से मैं सहमत हूं कि ललित कला माईनोरिटी है हरियाणा में। मेरा सवाल आपसे यही है कि गवर्नमेंट इसके लिए कुछ नहीं कर रही क्या। बजट सारा कहां जाता है।

रामविरंजन : आपका और हमारा सवाल बराबर है। हम भी यही पूछते हैं कि सारा बजट जाता कहां है। हम कुरुक्षेत्र में रहते हैं। आप मुंबई में रहते हैं। जितना आप दूर हैं, उतना हम भी उनसे दूर हैं।

सम्पर्क-9416260940

विशिष्ट रचनाकार ओम प्रकाश करूणेश

आत्मकथ्य

कुछ कहूं तो

मई 1956 में आंख खुली तो यह दुनिया पाई। होश आया तो खुद को दुर्धष संघर्षों में पाया। अभावों में जिंदगी के तीखे अनुभव भी हुए। पिता के पास कोई जमीन जायदाद तो थी नहीं, सो पिता ने गांव से कस्बे में आकर अपने पुश्तैनी कामधंधे मिट्टी के बर्तन बनाने के काम से हम सब परिवार वालों का पेट पाला। मां पूरी तरह परम्परावादी और पुराने रीति-रिवाजों में जकड़ी हुई महिला थी। वह पिता को अक्सर कहा करती, इन्हें काम में लगाओ, ताकि ये हमारा सहारा बने। हम अपने मन का इजहार करते थे, क्या तब? हम अपने माता-पिता की मन मारकर थोड़ी-बहुत मदद करते, मिट्टी जोहड़ों से खोद कर लाते, बड़े-बड़े ढेलों को मोटे सोट्टे मोग्गरों से छेतते-कूटते और उन्हें बर्तन बनाने लायक गारे में तबदील करते। हम मिट्टी को रौंदते और मिट्टी हमारे बचपन को। इसने हमारे भीतर न जाने कितनी अहसास की परतें जमा दी। हमने कितनी मिट्टी खाई होगी, कितनी उगली होगी? नामालूम! पिता के साथ जमीन जोत के मालिकों के साथ घर-परिवार और खेत-खलिहान के संबंधों को जाना-पहचाना। गांव, खेत से हम नाज़ की भुरलियों व मिट्टी की डलियों को भर लाए-इसमें प्यार भी था, जात-कुजात के किस्से भी थे, गालियां भी थी। इन्हें झाड़ने-पिछोड़ने का अनुभव भी समाज में गया। इन सबके बीच पिता जी की एक ही नेक सलाह थी-म्हारी तो बण ली जो बणनी थी, तुम पढ़ लिख लो और अपनी जिंदगी संवार लो...बणा लो। यहीं से मुक्ति के और सपने संजोने के ख्याल बने। लोग जब मिट्टी को मिट्टी बताते और उसकी मेहनत का मोल भी मिट्टी जैसा आंकते तो मन में एक खीझ पैदा होती। साधनों की कमी और छोटेपन के अहसास को हमने कुण्ठा नहीं बनने दिया। हां कभी-कभी हीनता के भाव जरूर जगते थे, पर दोस्तों ने सहारा दिया। इन सबके बीच अच्छी-खासी पढ़ाई का सिलसिला चल निकला। हिन्दी साहित्य से एमए, एमफिल, पीएचडी की पढ़ाई के साथ सरकारी कालेज में 1982 में नौकरी ज्वाईन कर ली। इससे परिवार को आर्थिक मजबूती मिली और जीवन में एक स्पेस मिला, लेकिन व्यवस्था के प्रति क्षोभ बना रहा, कुछ अनुभव भी ऐसे ही हुए कि पढ़े-लिखे कहे जाने वाले वर्गों में लाईलाज बीमारियां हैं। अब मन में 'कुछ करने और कुछ न कर पाने' का द्वंद्व मचा। लगा कि इसे कागज पर लिख लें। ऐसा किया भी लेकिन वह सब फाइलों में ही जमा होता गया।

पीछे की ओर लौटूं तो पहली रचना को लिखने की याद आती है...1974 में कालेज-कम्पीटीशन के लिए रची एक कहानी और शुरूआती दौर में कुछ कविताएं भी। कहानी को पहला पुरस्कार भी मिला था, तो मन-पांखी को उड़ने को आकाश मिला। रेडियो-दूरदर्शन तक की यात्रा भी की, लेकिन उन्मुक्त कल्पना और उड़ान का मजा ही कुछ और है। इसमें मिट्टी की गंध और अपने समाज की संरचनाएं काम करती हैं। सृजन के इस सफर में सरबजीत, तारा पांचाल, प्रकाश मनु, ब्रजेश कठिल, अशोक भाटिया, हरपाल से बहसें, तर्क-वितर्क, साहित्यिक विमर्श में स्पेस मिला तो डा. ओम प्रकाश ग्रेवाल से तेजधार। थोड़ा आगे सरकते हुए राजबीर पराशर, सुभाष, रविन्द्र गासो का साथ मिला तो नई राहें खुलने और पगडंडियां बनने की दुनिया मिली। पर छपने-छपाने की जो भूख रहती है, वो निरंतर गायब रही। यह अपने-अपने मिजाज की बात है, ऐसा एट्टीट्यूड बन गया-दोष मेरा है। अब डा. सुभाष ने बार-बार कुरेदा तो मन हुआ कि 'देस हरियाणा' पत्रिका लगातार साहित्यकारों, चिंतकों और अपने दौर के मुद्दों की आवाज बन रही है तो क्यूं न इसका हिस्सा मेरी रचनाएं भी बनें। ▪

ओमप्रकाश करूणेश की कविताएं

कैसे गा पाएंगे?

गद्हा तेरा बाप
और
फलां फलां
गधेपन की हद है भाई!

अब इस दौर में
गधे को गाली देना पाप है!
गधा ब्रांड अम्बेसडर है!
उसके सुर में अब संगीत लहरियां गूंजती हैं।
सींच रहा हर कोई उसे
नई-नई उपाधियों से
नवाजा गया वह
बाग-बाग हुआ और गुलजार वह
बगीचे में क्या बहार है,
क्या महक है साहब?

गद्हा हुआ सब पर सवार
बोझे मरता और हांफता था कभी
अब मस्ती में है वैशाखनन्दन!

ब्राण्ड अम्बेसडर गद्हा जी
पूरा सीधापन
और छोड़ नहीं पाये
ढेंचू-ढेंचू, नये अवतार में
अब मीडिया की मेहरबानी से
पहुंच गया वह फोकस में
दिमाग पर सवार
मंद गति चलने वाला जानवर
अब दुलत्तियां चला रहा
रग-रग, नस-नस दौड़ रहा

गर्दभ राग छिड़ते ही
सभी राग फीके पड़ गए

न बोलने का संकट रहा
न गाल बजाने का
न चुनौतियां रहीं
और सवाल तो गधे के सींग हो गए
लोगों के संकट मिटे
भूख मिटी, गरीबी गई

खुशहाली ही खुशहाली है
अब यही शोर है
जबसे आये बड़े बाज़ार
महंगाई कहां रही, बढ़ा रोजगार

आप थोड़े में रहना सीखें
राम नाम लें और ले जम्हाई
मस्जिद में जा दे खुदा की दुहाई
वाह गद्हा जी
सर्वम् मम देव

हर घर में हो यह संतोषी जीव
खामख्वाह बंट रहे लैपटॉप
पिछली सदी में लौटो
अपने रूठे देवों को मनाओ
संकट के मोचन के समस्त हल है जहां
त्वमेव सर्वज्ञ सर्वत्र
इतस्तत: न जाओ

मूलमंत्र पकड़ो
ज्ञान का शोध करो वैशाखनंदन!
सब तो है अपने यहां
भ्रम का भी एक विज्ञान होता है
उसी में घिरे रहो, रींगो वैशाखनंदन
सवालों के शोर में तो प्रदूषण है भाई

हमारे पास हीरे जैसे चमकीले कितने आभूषण हैं
अपने अतीत में फैले हैं
सीना फुलाने लायक कितने ही पल

अब यह जुमला मत समझना
और झूठ भी
गधेपन पे सवार है
घुड़सवार
जिसने सबकी रासें थाम ली हैं
और चालें भी
अट्टहास में सबको उड़ाया जा रहा है

अब तुम सांस रोके खड़े रहो
वह तुम्हें हिनहिनाने भी नहीं देगा

अब रींगने का दौर है
तो इस वक्त कैसे दहाड़ेंगे

तुम्हीं बताओ
इन कहकहों के बीच
गैसे गा पाएंगे
हम अपनी पीड़ा के गीत!!

बुत

1

शहर के चौराहे
अजायब घर
बुतों से अटे पड़े हैं
किसी को घूरते हैं
तो किसी को पूजते हैं
लोग हैं कि तबदील हो बुतों में
सोचते हैं
बुत मौन मुद्राओं में अचल
सब देखते हैं
चुपचाप-चुपचाप
बिना हिले-डुले
बुत कभी तो बेचैन होते होंगे!

2

बुत कहते हैं
बहुत कुछ
कि उन्हें न लगाया जाये
सार्वजनिक स्थानों पर
पर कहां मानते हैं लोग
मर्जी से आते हैं और लगा जाते हैं
और बुत अपने मन की कह भी नहीं पाते हैं
कुछ को नहीं भाता तो तोड़ जाते हैं
और कर जाते हैं अपमानित
और कुछ हैं कि गंगाजल-दूध से नहलाकर
कर जाते हैं सम्मानित

अपने-अपने ढंग से
बुत उनके काम आते हैं।

3

कबीर ने कविता की चक्की चलाई
कहा पाहन न पूजे कोई
कहां रूके लोग
बहुत रोये कबीर

पर हंसते देखे गए कबीर
एक दिन बुत की शक्ल में

बुत लगाने वाले कितने प्रफुल्लित थे
कुछ कहना मुश्किल है

पर इतना जरूर है
कि वे नाच-गा रहे थे
ढोल-मंजीरों की थाप पर

करतल ध्वनियों के शोर में
बुत बिना बोले भी अवसाद में थे
थके-हारे बुत अब अचल थे!

4

पिछले दिन
सभी बुत मिले
आपस में रोये

लोगों ने सुबह देखा
कि पार्क की घास गीली थी

बीटों से अटे पड़े बुतों पर
पक्षी अभी भी किल्लोलें कर रहे थे

बुतपरस्ती में मशगूल लोगों ने देखा
पर यकीन नहीं किया
उन्हें झाडा-पोंछा साफ किया
वे नहीं बांच पाये उनकी आंखों के आंसू
साल-दर-साल लोग लगे रहे
और अब सब जगहों पर बुत हैं!

5

हम सबने चाहा
बुत हमसे दिल खोलकर
अपना हाल-चाल कहें
पर यह क्या
बुतों ने कान बंद कर लिए
आंखें मूंद लीं
जीभ पकड़ ली

हंसने लगे जोर-जोर से
और फिर चुप्पा गए

हर चौराहे, सरे मैदान
खड़े चुपचाप बुत
लगाकि हमें भी संकेतों में कुछ कह रहे हैं
पता नहीं एकाएक हम भी चुप हो गए
और अंतत: बुत से हो गए।

6

बुत तो गूंगे होते हैं
कहां बोलते हैं, कहां हंसते हैं, कहां रोते हैं
अगर ऐसा होता
तो तुसाद में लगे बुत
कभी के पिंघल गए होते!

7

तुम कवि हो, चित्रकार हो, संगतराश!
बुतों की माथों की लकीरों में
तुमने आंक दिए शब्द
तुमने भर दिए उनमें रंग
अर्थध्वनियां और भाव लहरियां
उनके भीतर की पीड़ा कह रही हैं
अब दर्शक बन हम उसे देख रहे हैं
क्या पढ़ा भी करते हैं कभी?

सबद ज्ञान का

जात पात पूछैं सब कोई।
तो हरि का जन कैसे होई।।

हरि भजैं भक्तजन
भजै हरि सब संत जन

जागे-जगावै अर रोवै दिनरात कबीर
रो-रो नैनों का पानी खोवै
कह कह जग मुआ, मुआ दास कबीर
सब जन हरि ते कैसे जुलाहा जात हमार
एक नूर तै सब माणस उपज्ये
तै कैसे भये संत रैदास जात चमार
सूर सुर में किरसण की लीला गावैं
ग्वाल-बाल गुपाल गोपी संग रास रचावैं
फेर अहीरन की छोरी किरसन मै हीर बतलावै
छत्री राम पे भी तुलसी खूब नेह बरसावै
जातपात अर गोत-नात के तीखे बाण रे कमान
इस रीत को रोकण तैं क्यूं नी चौखे बाण चलावैं

जब जातपात ही पूछै सब कोई।
तब माणस बण हरि भजै कैसे भाई।।

शब्द-बाण

मैं
शब्दों को
गेंद की तरह
हवा में नहीं उछालता

कि वे हवा में ही रह जाएं
उछलकूद में!

मैं तो उन्हें
हथौड़े की तरह
मारता हूं घण पर!
चोट करता हूं मन पर!

शब्द चले जाते हैं
तीर की तरह लक्ष्य पर
घर, गाम और हर मैदान
धमा चौंकड़ी मचाते हुए थककर सो जाते हैं!

मेरे दिल से निकले
जुबां पर आए शब्द
दुनिया की हथेली पर मेहंदी रचाते हैं
तब ये जिंदगी गुनगुनाते हैं

इन पर कहने का बड़ा भार है
लो मैं इन्हें फिर फैंकता हूं
ठहरे हुए जल में!!

अनसुना

कभी-कभी पुचकार कर
तो कभी दुत्कार कर
अधमरा किया जा सकता है
पीट पीट कर
सरेआम चौराहे
और बीच बाजार

मार भी दिया जा सकता है
वे चीख सकते हैं
कोस सकते हैं
आहें भर सकते हैं
सिसकियों में आंसू पीकर
चुपचाप
दम तोड़ सकते हैं
चुपचाप
हिलना-डुलना और कुछ कहना
तिलतिल मरना है
वैसे ही मर रहे हो
क्यूं बुलाते हो मौत को
रहो चुपचाप, चुपचाप

मरने पे तुम्हारे
कोई मातम के गीत नहीं गायेगा।

तुम कोई बड़ा विज्ञापन भी नहीं
अपने दुख के, खबर भी नहीं
महज दुर्घटना पर कौन करेगा
गंभीर बात,कारकों की तो तलाश कतई नहीं

तुम ठहरे एक मामूली दिहाड़ीदार
तुम्हारी बात से कौन सा फैलेगा बाज़ार

ऐसे में, रोज मरने दिया जाता है
मामूली इन्सानों को
बिना किसी हील-हुज्जत और चपड़-चूं के
इस भरी दुनिया के बीच
बिना किसी सुनवाई के!

मंदी के दौर में

अपने तईं
सदा देखी मंदी
मामूली पगार
हर दिन काम नहीं
छोटी-छोटी जरूरतों के लिए कर्ज
बढ़ते रहे, बढ़ते रहे
फिक्रमंदी में डूबा
अपने तईं
जीता रहा वह
बेमजा जिंदगी
जो बेवजह तो नहीं थी
ऐसे दौर में
कहां रह सकता है खुश
जो वह रहे
खुशहाल कहे जाने वाले
सरकारी समय में भी
वह खुशहाल तो कतई नहीं था
तंगहाल, खुश हो भी कैसे सकता था?
दिनभर लेबर चौक पर
ठाली बैठे, बीड़ी फूंकते
लौट आता खाली
उसकी डिग नहीं पटती थी
भारी मन
बोझिल तन
घर में ठठाकर हंसने जोगी
हंसी भी कहां बची थी, उसके पास

वह करवटें बदलता रहा
रातभर चिंता में रहा

फिर कहीं ऐसा न हो जाए कल!

उत्साह

जेब भारी रहने से
ऊंचा हो जाता है सुर
और
दुबका मन मुखर
पांवों में हलचल
अहा! खरगोश सा तन
दौड़ता है तीव्र और तीव्र
बढ़ जाती हैं कुलेलें-चौंकड़ियां
कौंधती हैं आंखों में बिजलियां
आसमां में उठती हैं बदलियां
सूरज से करती हठखेलियां
मन मयूर खिल-खिल जाता है
नृत्य की पदचाप के बीच
थिरकने लगता है पोर-पोर
चांद-तारे उछलते हैं जेब में
तो अंगड़ाई भरता है बदन
करवटें ताज़गी से भर उठती हैं भोर
गेंद सा उछलता मन
आसमां की ऊंचाइयां छूता है
खेलता हुआ मन
दूने उत्साह से हवा संग तैरता है
सूरज-चांद को लेकर गोद में
जेब में खनखनाते हैं सपने
और महक उठता है बाज़ार!

सम्पर्क -9255107001

■

फिल्मों में हरियाणा और हरियाणा में फिल्में

□प्रस्तुति – अरुण कैहरबा

हरियाणा सृजन उत्सव में 26 फरवरी 2017 को 'फिल्मों में हरियाणा और हरियाणा में फिल्में' विषय पर परिसंवाद में फिल्म अभिनेता व रंगकर्मी यशपाल शर्मा तथा फिल्म समीक्षक रोशन वर्मा तथा सहीराम शामिल रहे। सत्र का संचालन सहीराम ने किया। विषय से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचारोत्तेजक संवाद हुआ जो यहां प्रस्तुत है – सं. –सम्पादक

सही राम – मैं बहुत अच्छी चीज से शुरूआत करना चाहता हूँ। आपके लिए शायद यह सूचना भी होगी। 1944 या 45 में एक फिल्म बनी थी-धरती के लाल। वह फिल्म बनाई ख्वाजा अहमद अब्बास ने। हम कल से हाली पानीपती का जिक्र कर रहे हैं और उनकी परंपरा से खुद को जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। वह फिल्म देखने का सौभाग्य मुझे मिला। 70 साल पुरानी फिल्म है – ब्लैक एंड व्हाईट। पुराने जमाने की फिल्म है। लेकिन अद्‌भुत फिल्म है और ख्वाजा अहमद अब्बास हाली के परिवार से ही थे। उन्हीं के परिवार से जुड़े हुए थे-उनके नाती। जो प्रगतिशील आंदोलन का फिल्मों, नाटकों, गीतों, फिल्मी गीतों में उसके वे प्रमुख स्तम्भ थे। आपको जानकर खुशी होगी कि आवारा, श्री420 और राजकपूर के आर.के. प्रोडक्शन की फिल्म थी। इन सबको लिखने वाले ख्वाजा अहमद अब्बास थे। मैं इसलिए कह रहा हूं कि हमारी पुरानी परंपरा इतनी कमजोर नहीं थी। हमारी एक समृद्ध परंपरा है। अपने गांव के एक भजनी की एक लाईन मुझे याद है-तू अपने मन की याद कसेरे जा। मन की याद को कसेरते रहना चाहिए। इससे कुछ अच्छी चीज निकलेगी।

यह एक और अच्छी बात मैं बता रहा हूं। हिन्दी की अब तक की सबसे कामयाब फिल्म दंगल। पांच सौ करोड़ का बिजनेस किया है। आज तक किसी फिल्म ने नहीं किया। वह हरियाणा की पृष्ठभूमि पर है। यह हम सबके लिए खुशी की बात है। उससे पिछली फिल्म सुल्तान भी हरियाणा की पृष्ठभूमि पर थी। वह भी इतनी ही कामयाब फिल्म थी। मेरा कहना यह है कि 'दंगल' और 'सुल्तान' को जो कामयाबी मिली। उससे पहले हिंदी फिल्मों में हरियाणा आ रहा था। 'तन्नु वेड्स मन्नु' में आया। वह फिर 'हाईवे' में आया। 'एनएच-10' में आया। 'मटरु की बिजली का मंडोला' में आया। 'सौदागर' में दिलीप कुमार जैसा कलाकार हरियाणवी बोल रहा था। इन दो फिल्मों में तो पूरी तरह से हरियाणा था। बंबईया फिल्मों का परिदृश्य बदल रहा है। इनकी जो कहानी बदल रही है। इनका जो प्रस्तुतीकरण बदल रहा है। और उसमें हरियाणा मुख्य रूप से आ रहा है। इस परिदृश्य पर आप थोड़ी सी रोशनी डालें। मेरा इसी से जुड़ा एक सवाल यह है कि क्या 'दंगल' और 'सुल्तान' की कामयाबी क्या हरियाणवी को छोड़ कर हिंदी की ओर उन्मुख होने की जरूरत को रेखांकित करता है। या फिर नए परिदृश्य में हरियाणवी फिल्मों को नया जीवन मिलेगा।

यशपाल शर्मा – आज का अखबार पढया़ किसे नै। बहुत सारी समस्याओं से उळझे होए हैं अखबार आज के और टीवी। एक ईंट उठाओ चार समस्याएं हैं। हर प्रदेश में। कहीं भी ऐसा नहीं है कि कोई भी सुखी है। यदि पोजीटिव देखें तो सबसे बढिया़ अपणा प्रदेश है। मैं बता रहा हूं जितना मैं हरियाणा के गांव-गांव में गया हूं-इतने लंबे-लंबे लास्सी के गिलास। लोग बैठ जा-बड़े-बड़े लड्डू लै बेटा खाकै जा। यह जो सारी चीजें हैं। हमारे गामा मैं मिलैं हैं। चाहे वो जाट्टां का गाम हो, चाहे वा बणियां का गाम हो। चाहे वो गुज्जरों का गाम हो। मनैं तो आज तक यही नी बेरा कि यें सरनेम है कौण। जाट है कि बामण है। मनैं पता ही नी। सबसे बढिया़ बात जब मनैं फिल्म अनाउंस करी थी तब तक मनैं या भी बेरा नहीं था कि लख्मीचंद बामण है। मनै यो भी नी बेरा था। मनै उनकी रागणी सुण राखी थी। उनके किस्से सुण राखे थे। मनैं सोच्या कि इससे बढ़िया कोई आइडिया नहीं होगा।

मैं फिल्म करना ही नहीं चाहता था। मैं चिल्ड्रन थियेटर करना चाहता था। जैसा बच्चे अभी कर रहे थे, मैं वैसा थियेटर करना चाहता था। ताकि स्कूलों में रंगमंच को पढ़ाया जाए। कला के बारे में बच्चों को बताया जाए। ललित कला हो, रंगमंच हो, फिल्में हों चाहे साहित्य हो। हर तरह की चीजें बचपन से सिखाई जाएं। बचपन से सिखाया जाए ताकि उनके अंदर ये चीजें इंजैक्ट हों।

मैं यह मानता हूं कि रंगमंच सबसे बड़ी विधा है। जोकि व्यक्तिगत विकास के लिए बहुत जरूरी है। इसे लोग समझ नहीं रहे हैं। आपस का भाईचारा, एक दूसरे की हैल्प करना, भरोसा करना, कल्पना में जीना। बैठे-बैठे डिब्बे बना दिए। फैक्टरी बना दी। बैठे-बैठे स्कूल बना दिया। कल्पना है ना यह। एक डंडा लिया – उसको चाहे सांप बणा लो, रस्सी बणा लो, भाला बणा लो। मैं कह रहा हूं कि कल्पना में विश्वास करना बचपन में इंजेक्ट होता है। वह तो अखबार वालों ने दो चार बावळों नै कह दिया कि तू बहुत अच्छा एक्टर है। मनैं कहया कि भाई एक्टिंग करनी है तो सिर्फ थियेटर मैं ही क्यों करां फेर। क्योंकि मैं चिल्ड्रन थियेटर करुंगा तो ना ही ढ़ंग से एक्टिंग कर पाऊंगा। टीचिंग करुंगा या डायरेक्टर बणूंगा तो एक्टिंग रह ज्यागी। मनै सोच्या कि थोड़े दिन एक्टिंग कर लेता हूं। एक्टिंग करने लगा तो सोच्या कि दस बारह या पांच सौ लोगां के सामणें क्यूं करां भाई। पांच सौ करोड़ के सामणे क्यूं ना करां। बस इसी लिए मैं चला गया।

मैं गया था 1996 के अंत में। इतने सालों से मैं सोचर्‌या था कि मैं हरियाणा मैं रूकणा चाहिए। यदि मैं बोंबे ना गया होता तो कोई मेरा इतना स्वागत ना करता। आदमी ठप्पा चाहवै। हरियाणा में मेरे से कई गुणा बढ़िया कलाकार हैं। मनैं देखे हैं। सैंकड़ों कलाकार हैं, लेकिन उन्हें उतनी इज्जत नहीं मिलेगी। बोंबे से आए कलाकार को आप इतनी इज्जत दे रहे हो। क्योंकि मैं कुछ कमा कै या दुनिया के सामणे नाम कमाकै आ गया। बस इतना ही फर्क है ना। कला में तो मैं उनसे ज्यादा नहीं हूं जो यहां बैठे हैं। कला तो उनके पास मेरे से ज्यादा है।

मुझे 1997 से लेकर अब तक हरियाणवी फिल्मों के बहुत से ऑफर आए। लेकिन एक परसेंट भी इंस्पिरेशन नहीं मिली कि मुझे यहां रूकना चाहिए। इंडस्ट्री मैं नाम कमाण जोगा कुछ था ही नहीं यहां पे। 2016 की शुरूआत में राजीव भाटिया नै फिल्म बणाई – पगड़ी। मैंने उसको कहा कि यह फिल्म बणा तू। मेरा क्लासमेट है। सतरंगी का डायरेक्टर मेरा क्लासमेट है – संदीप शर्मा। दोनों ने फिल्में बनाई। दोनों को नेशनल अवार्ड मिले। दोनों में मैं था।

उसके बाद मैंने हरियाणवी फिल्मों की तरफ ध्यान देना शुरू किया कि यस हो सकता है काम। लेकिन बंजर जमीन है थोड़ी सी। उसको उपजाऊ बनाना पड़ेगा। बीज डालना पड़ेगा। पत्थर में पौधा उगाना पड़ेगा। मुश्किल है लेकिन हो सकता है। इतना भी मुश्किल कोनी। मैं कोशिश कर रहा हूं। मैं सबको यह बोलता हूं कि आप कोशिश करो कि मेरे अकेले के करने से कुछ नहीं होने वाला।

मैं अगर ढूंढ़ रहा हूं कि क्या ऐसी चीज है जो सबसे बेहतर हो सकता है। अगर 'दंगल' हिट है और 'सुल्तान' हिट है। पूरी दुनिया देख रही है। हरियाणवी की वह क्या चीज है जिसे हम दिखा सकते हैं, जिसे पूरी दुनिया देखे। मेरे सामने दादा लख्मीचंद की तस्वीर उभरी। मैंने उस पर काम करना शुरू किया कि उनके ऊपर फिल्म बनानी होगी। जाट मेहर सिंह, मांगे राम जी, देवी राम जी, रती राम जी सभी उनके शिष्य हैं। मैंने सोच्या कि पहले गुरूजी पर पहले काम करना होगा। गुरू जी के भी गुरू जी रहे मान सिंह जी बसोदा गांव के रहने वाले। मैं वहां भी जा के आया। उन पर फिल्म बनाने का मेटिरियल मेरे पास था नहीं। किताबें भी नहीं थी, गाणे भी नहीं थे। तो मैंने लख्मीचंद चुना। उसके बाद तो सर छोटू राम, दयाचंद मायना, धनपत, बाजे भगत, मांगे राम जी, जाट मेहर सिंह सहित बहुत से व्यक्ति हैं, जिन पर काम किया जा सकता है या उनके बारे में जाना जा सकता है। मैंने यह बात जानी है कि हरियाणा में इतना साहित्य है और गूढ़, गहरा व गहन साहित्य है, लेकिन वो किसी को पता नहीं है। हमारे हरियाणवी लोगों को भी नहीं पता है बाहर की बात तो छोड़ दो। हम क्यों अपने साहित्य जैसे कबीरदास, सूरदास व गुरूनानक को सारी दुनिया जान रही है। क्यों ना हम अपने महापुरूषों- चाहे दलबीर सिंह सुहाग-आर्मी के चीफ थे। प्रथम विश्व युद्ध से इनके सारे पुरखे आर्मी में थे। श्याम बेनेगल जी उनके ऊपर काम कर रहे हैं। एक सीरियल बना रहे हैं राज्य सभा चैनल के लिए। मैं कह रहा हूं कि कोई भी चीज गलत नहीं है।

मुझे गंदगी दिखती है, यूट्यूब पर। गंदे गाणे हैं। कई गाणे ऐसे हैं जो देखने नहीं, कईं जात-पात के ऊपर हैं। कई सिर्फ बंदूक और पिस्टल, छोरी नै किस तरियां लेग्या इसी के ऊपर हैं। कई गाणे आंदे ही बेतुकापण आ जाता है। कहां ते आए यें गाणे। कौण ल्याया यू कल्चर। क्यों सुणा रे हो हमनै भाई। सब्जैक्ट ही नी मिलते किसे नै। 'दंगल' सब्जैक्ट कहां तै आया। यहीं तै ना। म्हारे हरियाणा के गाम की छोरी। सब्जैक्ट यह कि बाप-बेटी का रिलेशन, उनकी ताकत, उनकी जिद। यही तो है -गाम-गाम मैं सब्जेक्ट भरे पड़े सैं।

दादर मुंबई में इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल चल रहा था। एक फिल्म है- चिल्ड्रन ऑफ हैवन। आप जरूर देखना यदि नहीं देखी हो। जरूर देखना, छोड़ना मत। पूरे वर्ल्ड से 40 फिल्में आई। वो माजिद मजीदी के निर्देशन में इरानी फिल्म है। उसको बेस्ट फिल्म का अवार्ड मिला। उसका सब्जैक्ट क्या है – दो भाई-बहनों

के पास दो जूते हैं। एक बच्चे के जूते हैं। वे मां-बाप को नहीं बताते। पूरा टाईम वे जूते अदला-बदली करते हैं। बहन भाग-भाग के आएगी। जूते उतारेगी। दूसरा पहनेगा। वह स्कूल में लेट जाएगा। जूतों को लेकर जबरदस्त संघर्ष दिखाया गया है। यदि उन्होंने बता दिया तो मां-बाप मारेंगे। यह सब्जेक्ट है। लड़का फर्स्ट आना चाहता है। लेकिन पता लगता है कि सेकेंड आने पर इनाम में जूते मिलेंगे तो वह फर्स्ट नहीं आना चाहता। वह सेकेंड पोजीशन लेना चाहता है। बहुत कमाल की कहानी है। उस फिल्म को बेस्ट फिल्म का अवार्ड मिला। एक बूढ़ा लाठी टेकता बाहर आरया था फिल्म देख कै। उसतै पत्रकारों ने पूछ्या कि फिल्म कैसी लगी। बूढ़े का जवाब था - ओए कैसी लगी। कैसी लगी पूछो यश चोपड़ा से, जाके पूछो सुभाष घई से, जाके पूछो रामगोपाल वर्मा से। जिन्हें सब्जेक्ट नहीं मिलते। यह होती है फिल्म। यह जो गुस्सा है। यह गुस्सा आना जरूरी है। सालों से यह गुस्सा जो हमने दबा कर रखा है। एक प्रोब्लम हमनै बिस्तर के नीचे दबा दी। एक प्रोब्लम वहां दबा दी। समस्याओं से हम भरे जावैंगे और हम कभी आगे बढ़ ही नहीं पावैंगे। कूपमंडूक की तरह हम एक ही जगह पै रह जावैंगे। हम कुछ कर नहीं पावैंगे। मैं यह कहर्‌या हूं कि गुस्सा आना जरूरी है।

'सुल्तान' और 'दंगल' का हिट होना। हमारे सब्जेक्ट पर बाहर के लोग फिल्म बनाएं। यह जरूरी है। हमें रिस्पेक्ट करनी चाहिए। उसमें भी मैंने कमियां देखी। बहुत ज्यादा हैं। हाथी इतना बढ़िया नहीं लागर्‌या। उसकी कान मैं मैल है। उसकी पूंछ टेढ़ी है। अरै के जरूरत है भाई। हमारै ना मरोड़ नी जावै किसी की भी भाई - बाकी सब तो ठीक है। पर न्यूं क्यूकर कह दूं कि आच्छा है। यह मरोड़ क्यूं है भाई। जो कोई काम अच्छा कर रया है तो खुल कै तारीफ करो ना। खुल कै जीयो। मत देखो कौण सी जाति का है। कोण से धर्म का है। जो अच्छा काम कर रहा है, उसे अच्छा कह दो। कर्मों के आधार पर किसी की सराहना कर दयो। बस और के चाहिए उसनै। एक फूल दे दयो स्टेज पै। और के वा करोड़ रूपये मांगै सै।

यह नहीं कि मैं कह दूं-संस्कृति वाले गाने गाओ। गंदगी मत फैलाओ। संस्कृति मतलब शिव के भजन, यह तो हमारी संस्कृति का है। अरै इसके अलावा कोई नहीं है के? या तो ब्लैक या व्हाईट। उसके बीच मैं कोए दुनिया नहीं है? ग्रे शेड क्या है नहीं।

आज की फिल्में जिस तरह चेंज हुई हैं। 'बेंडिट क्वीन' से जिस तरह इनकी शुरूआत हुई है। राम गोपाल वर्मा की 'सत्या' से फिर 'वेडनेस डे'। काफी सारी फिल्में एक जैसी आई हैं। 'भेजाफ्राई' वगैरह। जो फिल्मों का ट्रेंड चेंज हुआ है। हीरो-हिरोइन वाला। हीरो हिरोइन को बचाएगा। हिरोइन पर फिर कोई मुसीबत आएगी। फिर वह विलियन ताकतवर रहेगा। शुरूआत मैं वह भारी रहेगा आखिर मैं मरैगा। क्योंकि राम-रावण की लड़ाई है आखिर में उसे मरना है। बुराई की हार होनी ही होनी है। यह बेसिक फार्मूला था कि कुछ मुसीबतें आएंगी और अंत में यही होगा। एक लाइन में कहानी यही होती थी। आजकल यह चेंज हो गया है। टोपिक चेंज हो गया। स्टाइल चेंज हो गया कहने का। हमें उनके साथ चलना चाहिए।

पिछले सत्र में ललित कला पर चर्चा में कमाल की बात कही गई। मैं उनसे सहमत हूं कि यदि दामण व गाम नहीं दिखाया जाएगा तो कैसे हरियाणा। भाई हम कब आगे बढ़ैंगे इससे। मैं कहर्‌या हूं कि यहां पै देखल्यो कितने लोगों ने दामण पहन राख्या है। कितने लोगां नै पगड़ी पहन राखी है। दिखाओ। सामणे बैठया हरियाणा मेरा। वी शुड एक्सेप्ट। यह एक्सेप्टेबिलिटी बढ़ाणी चाहिए हमें। तारीफ ना करो चलो। लेकिन कंडेंम तो ना करो। बोंबे तै आग्या यू। आज कल वहां इसनै काम नहीं मिलर्‌या। लाखों-लाख रूपये का काम छोड़ कै मैं इधर आर्‌या हूं। कोई बात नहीं। कोई चीज बनाने के लिए उसमें घुसना पड़ता है।

'पगड़ी' फिल्म आई है। 'पगड़ी' में एक दिन मैंने शूटिंग की थी। लेकिन दस दिन पूरे हरियाणा मैं घूम कै उसका प्रोमोशन किया था। हालांकि पूरे हरियाणा में कहां घूम पाए, उसमैं तो मनैं दस साल लग ज्यांगे। एक साल हो गया घूमते-घूमते। इबे तो इतना भी नहीं देख्या। मनैं एक साल होगे पढ़दे-पढ़दे, इबे कुछ भी नहीं पढ़्या। कसम तै कहर्‌या हूं - मैं बहुत छोटा-एक साल का बच्चा हूं हरियाणा के मामले में। लेकिन मेरे को मजा आ रहा है। मुझे साफ दिख रही हैं - प्रोब्लम। जात-पात की भी, थियेटर की भी, राजनीति की भी, फिल्मों की भी। साफ दिख रहा है। लेकिन उन्हें कोई मानने को तैयार नहीं है। कई लोग भेजते हैं मुझे वीडियो। भाई या बेटी बचाओ पै है - ध्यान से देखिए। भाई या फोजियों पर है- ध्यान से देखिये। उसमैं डायलोग कैसे हैं - हां मेरा बेटा, फौज मैं जावैगा। नाम कमावैगा। देश के लिए जान दे दिए। गोळी खा लिए। तरीका ठीक नहीं है। मंशा व मकसद अच्छा है। तरीका ठीक नहीं आने के लिए मैं दोषी नहीं ठहरा रहा हूं किसी को। लेकिन हम इंटरनेशनल नहीं हो पाएंगे। हम राष्ट्रीय भी नहीं हो पाएंगे। हम प्रादेशिक होकर रह जाएंगे। कईं बार तो हम गांव के या जिले के रह जाएंगे बस। एक सीडी बणा कै हम अपणे जिले मैं दिखाते रहैंगे बस। इससे हम ऊपर क्यों

नहीं उठते। चार्ली चैप्लिन का उदाहरण ल्यो सिर्फ। इत्ता सा। गरीब फैमिली का। मां-बाप के इतने झगड़े। उनकी आटोबायोग्राफी पढ़ो। अब्राहम लिंकन का उदाहरण ल्यो। इतने सारे उदाहरण हैं – छोटे छोटे व्यक्ति क्या-क्या कर गए। मक्सिम गोर्की को ले ल्यो। अंतोन चेखव को ले ल्यो। जितने भी हमारे उदाहरण हैं- प्रेमचंद को ले ल्यो। फणीश्वरनाथ रेणू को ले ल्यो। बिहार के छोटे से गांव से। कहां तीसरी कसम फिल्म बना दी राज कपूर ने। कितने बड़े-बड़े काम हो गए। हमारे लिए इंस्पिरेशन की कोई कमी नहीं है। हमारे पास बहुत कुछ है।

मेरी लाइफ की सबसे अच्छी फिल्म कौण सी है – मैं जज बण के गया था रांची में। शोर्ट फिल्म फेस्टिवल था। मैंने एक फिल्म देखी। एक मिनट की फिल्म थी। एक ही शोट था। कोई कट भी नहीं था। सबसे सस्ती फिल्म थी। दो सौ रूपये में बनी है। दो सौ रूपये में कुछ कागज खरीदने पड़े। कुछ फ्रेम खरीदने पड़े। एक फोटो की एग्जीबीशन दिखाई गई है। काला कागज है। काला फ्रेम है। नीचे लिखा हुआ है – लाल किला। काले कागज में कुछ भी नहीं है। आगे फिर काला फ्रेम-खाली। उसके नीचे लिख रखा था-कुतुब मीनार। आगे फिर काला कागज उसके नीचे लिख रखा था – ताज महल। फिर आगे एलीफेंटा और ना जाने क्या-क्या। लास्ट में एक पर लिखा हुआ था – इनको आंखें चाहिएं। नेत्रदान कीजिए।

पैसों से नहीं पैशन से बनता है सिनेमा। पैशन से होता है – थियेटर। पैशन से होती है – पेंटिंग। वो ऐसा नहीं है कि सब्जी खरीद रहे हैं, चलो आलू भी खरीद लो। कि भाई जी सा नहीं लागर्‌या, एक आध फिल्म करवा दे यार। कला के लिए अपनी जान देनी पड़ती है। अपणे आप को झोंकना पड़ता है। छोरियां की तो बात ही छोड़ द्यो। मन्नैं कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं। मैं जब हिसार से निकल्या तो चंडीगढ़ पंजाब यूनिवर्सिटी में एम.ए. ड्रामा किया। फिर दिल्ली में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा में तीन साल एक्टिंग कोर्स किया। फिर दो साल रेपेट्री की वहां। सारे मोहल्ले वाळे पूछ्या करते – कद आवैगा टीवी मैं? इतने साल हो गए तनैं। मैं उननें बताता कि मैं टीवी वाळा काम कोनीं करुं। मैं वो स्टेज पै नाटक करैं ना। आच्छा-रामलीला करै है। मतलब किसी को पता ही नहीं है कि रंगमंच की असली विधा है क्या। सिनेमा असली है क्या। हमें थोड़ा विकसित होना पड़ेगा। अच्छी फिल्में देखना, अच्छा रंगमंच देखना, अच्छी किताबें पढना, अच्छा साहित्य पढना, अच्छी चीजों को प्रोमोट करना। दारू-सिगरेट में जो पैसा खर्च करते हैं, उसकी बजाय सही जगह पर खर्च कर दो।

संस्कृति की बात बड़े-बूढ़ करते हैं। एक बहुत जोर-जोर से संस्कृति की बात करै था। मनैं पूछ्या-ताऊ कितणे बाळक हैं। बोल्या – तीन हैं। मनैं पूछया – के करैं हैं? बोल्या एक कनैडा जार्‌या है। एक आस्ट्रेलिया जार्‌या है। एक उरै ही है-बैंगलोर मैं डॉक्टर है। अपणे बच्चों को कोन्वेंट स्कूल में पढ़ाया है। बाहर बोल रहे-हरियाणवी बोलो। कान्वेंट स्कूल मैं पढ़ा कै बच्चों नै विदेशां मैं भेज रहे हो। जब भी संस्कृति की बात हो अपणे अंदर से शुरू होना चाहिए। या तो हम बोलें ना। जो कथनी हो वो करनी हो तो मजा है।

कहने की एक कला होती है। बहुत सारे डायलोग बोलना। कम डायलॉग के अंदर ज्यादा बतावैं। यह हमें सीखना होगा कि हम कम शब्दों में ज्यादा कह पाएं।

यह जो एन एस डी में जब एडमिशन हुआ तो हमारी ट्रेनिंग हुई। तो कारपेंटरी सिखा रहे हैं हमें। कील ठोंकणा, रंदा लगाणा। कभी मेकअप सिखा रहे हैं। फर्स्ट ईयर मैं एक साल हमनै यो हे सिख्या। कभी तंबू गाड रे हैं। कभी स्टेज को पीछे से ठीक कर रहे हैं। कभी लाईटें ठीक कर

रहे हैं। भाई एक्टिंग सीखण आए हैं। यो के सिख्या रहे हो भाई। म्हारे हरियाणा मैं एक चीज है कि सीधा किसे नै स्टार बनणा है। तो मैं सीधा बतार्या हूं कि एक्टिंग सीखने के लिए ट्रेनिंग क्या-क्या होती है। उस तरीके से एक्टिंग सीखने के लिए कितनी आस-पास की और पूरे वर्ल्ड की चीजें सीखनी पड़ती हैं। ऐसे ही नहीं एक शब्द निकलने के लिए कितने साल का एक्सपीरियेंस होगा उसका। पेंटिंग का एक ब्रश लगाने के लिए एम.एफ. हुसैन ने कितनी मेहनत की होगी। ब्रश का एक स्ट्रोक लगाना हर किसी की बात नहीं है।

एक नवंबर को मैंने अनाउंस किया है कि लख्मीचंद बणाऊंगा तो उसके बाद लोगां के फोन धड़ाधड़ आ रहे हैं कि मन्नैं भी ले लिये भाई। मन्नै भी ले लिये। इब तो पोलिसी भी बण रही है। पोलिसी बणा ल्यो। म्हारी कोणसी पोलिसी है भाई। मैं कह रहा हूं कि ये हारे की खीर है। मैगी नहीं है। या हारे की खीर है टाइम लेवैगी। 1901 से 1945 तक के था। ना जीयो था ना वोडाफोन था। ना ऐसे कपड़े थे। ना मोटरकारें थी। उस युग मैं जाणा पड़ैगा। थोड़ा थाउस रखो थाउस।

सवाल : यशपाल दा ये बड़ी अच्छी बात लगती है कि आप जैसे लोग हरियाणा में आकर काम करते हैं। दो सवाल है। पहली बात तो यह कि मैं 'चंद्रावल' को लेकर आपसे असहमति रखता हूं। हरियाणवी कल्चर पे हिंदी सिनेमा में बहुत सुंदर फिल्में बन रही हैं। एकदम ट्रेंड चेंज हुआ है। जाहिर सी बात है कि बॉलीवुड में कहानियां खत्म हो गई हैं। सवाल यह है कि 'दंगल', 'सुल्तान', 'एनएच-10' इनमें बड़ा नाम काम करता है। आमिर खान है, सलमान खान है। पिछली बात पर जाता हूं कि 'चंद्रावल' बहुत सुंदर फिल्म थी। आपने कहा था कि उसमें केवल गाने हैं। (यशपाल द्वारा स्पष्टीकरण- मैंने यह नहीं कहा था कि उसमें केवल गाणे हैं। मैंने यह कहा कि वह गाणों की वजह से चली थी। उसमें बहुत अच्छे गाणे हैं।) मैं कह रहा हूं कि वह कहानी आज भी हरियाणा में उसी तरह से घटित हो रही है। ऑनर किलिंग उस दौर में किस तरह से देखी जाती थी। आज उसका रूप कोई और है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि दर्शकों के ऊपर स्टारिज़्म का बहुत दबाव है।

यशपाल शर्मा – उसी दबाव को खत्म कर रहा हूं। मैं अपणी फिल्म में 100 परसेंट एक्टर हरियाणा से ले रहा हूं। कोई स्टार नहीं होगा। दूसरी बात चंद्रावल एक माईल स्टोन फिल्म है। मैं उसे नकार नहीं रहा हूं। लेकिन आप पोजिटिविटी देखो। यदि वो सामने बैठा है, जिसकी फिल्म है तो उसकी बुराई नहीं कर सकते। मैं कह रहा हूं कि मुंह पे बुराई करो ना यार। जो कुछ गलत है, उसे गलत बोलो। आप सामणे वाले का और अपणा भी नुकसान पहुंचा रहे हो। आप काम नहीं कर पाओगे अगर आप सच्चाई पर नहीं चलोगे। आपकी रिसपेक्ट तो मैं करता हूं लेकिन अंदर से गाळी दे रहा हूं। जो अंदर है, वही बाहर होना चाहिए।

सही राम – चंद्रावल फिल्म व कहानी के तौर पर बहुत कमजोर फिल्म है। उसके गाने सचमुच बहुत अच्छे थे। हरियाणवी जनमानस को पसंद आए वे। चंद्रावल 1984 की फिल्म है। यह प्रेमकथा थी, उससे पहले हिंदी में बहुत प्रेमकथाएं बन चुकी थी। बॉबी बन चुकी थी। लवस्टोरी बन चुकी थी। 84 में सिनेमा कहां पहुंच चुका था। 73-74 में श्याम बेनेगल की अंकुर फिल्म आ चुकी थी। मतलब सिनेमा वहां पहुंच चुका था। जब यह फिल्म आई तो यह एक तरह का सांग था। नौटंकी थी पर्दे पर। उसे बहुत ज्यादा गलोरीफाई करने की जरूरत नहीं है। कमजोरियां पर्दे की जो हैं, उसे स्वीकार करना चाहिए।

सवाल : शर्मा जी से मेरी एक जिज्ञासा है कि उन्होंने कहा कि वे लख्मीचंद पर काम करना चाहते हैं। मेरा प्रश्न है कि क्या आप पंडित लख्मीचंद और समाज के बीच में जो नोंकझोंक हो जाती थी। या जो हास्यप्रिय वाकया हो जाते थे। क्या उन्हें स्थान मिलेगा।

यशपाल शर्मा – मुझे गागर में सागर भरना है। दो घंटे में पूरी दुनिया क्रियेट करनी है। दो घंटों में से एक घंटा तो गाने ही चलेंगे। अब आप देख लीजिए कि मुझे एक घंटे की फिल्म बनानी है। वह भी गानों के साथ। यह ध्यान रखना है कि स्टोरी ना रूके। म्यूजिकल फिल्म है। मेहर सिंह का भी गाना है उसमें। मांगेराम का भी गाना है उसमें क्योंकि वे साथ में थे। बाजे भगत का भी गाना है। निहाल सिंह का भी है उसमें, जिसके साथ वे घर से भाग कर सांग देखने गए थे। और उनका भी गाना है – सोहन लाल कुंडल वाला। सबकी शायद इच्छा पूरी ना हो सके। लेकिन मैं वही कुछ टच करूंगा उसमें जहां फिल्म की कहानी ना रूके। एक किस्सा बताने के लिए मैं अपना किस्सा नहीं रोक सकता।

मैं चाहता हूं कि यह आज की फिल्म बने। मेरी फिल्म जा रही थी। मैंने बताया कि यह गाणा होगा मेरी फिल्म में। वह बोली-इसनै कोण देखैगा। फिर मैंने बताया कि डिगचिक-डिगचिक वाला यह गाना भी होगा, जोकि फिल्म में नहीं होगा। वह बोली हां ऐसे गाणे रख। यह फर्स्ट रिएक्शन है। लेकिन मैं ऐसा करुंगा नहीं। मैं उसी वक्त के गाणे। उन्हीं रागों पर और उन्हीं इन्सट्रूमेंट पर दिखाऊंगा। प्रोड्यूसर को मैंने स्पष्ट बोल दिया है कि मुझसे उम्मीद मत रखना कि कमाएगी पैसा। हो सकता है डूब जाए। सीधी सी बात है। आपकी मर्जी है अभी छोड़ जाओ। मुझे वही चाहिए जो हरियाणा के खून के साथ जुड़ा हो। बेशक मुझे चार-पांच लोगों से पांच-पांच, बीस-बीस लाख लोगों से लेकर करना पड़े। लेकिन मैं ऐसे को नहीं लूंगा जो कहे कि ऐसा करद्यो। उसमें आईटम सोंग डाल दो। वह होना मुश्किल है। वह मुझसे नहीं हो पाएगा। मैं कोशिश करुंगा कि फिल्म लोगों को पसंद आए। गाणों में ब्रह्मज्ञान भी है। बहुत सारी चीजें हैं। ज्ञान की बातें बहुत हैं। ज्ञान की बातें तो हरियाणा में श्रीकृष्ण जी बोलगे यहीं। तो अपां कितना देवैंगे। तो मैं चाहता हूं उन गाणों में ही ज्ञान है पूरा। कोई भी गीत लो- लख चौरासी खत्म होए ना बीत कलम युग चार गए। बेशक वो-आवागन रही लाग जगत मैं, कोई रात मरया कोई दिन मरग्या। सारे गाण्यां मैं ज्ञान ही ज्ञान है। ये सारे गाणे दिखाकर भी फिल्म इंटरेस्टिंग होनी चाहिए। ऐसी होनी चाहिए ताकि पब्लिक रूकी रहे। मजा आए उनको।

सवाल : पहले जो फिल्म बनती थी हरियाणवी सिनेमा में। आज जो माहौल है आप देख ही रहे हैं। थोड़ा चेंज होने की शुरूआत हुई है। मैं यह जानना चाहता हूं कि मेरा जो प्रोड्यूसर्स को लेकर मेरा जो अनुभव रहा है। उनकी सोच भी अब कल्चरल को लेकर बढ़ावा देने की नहीं है। जितनों से मैं मिला हूं। वह यह बोल देते हैं कि बेटा क्या होगा। कितना दिखा लोगे आप। मार्केट इस तरह की नहीं है। सवाल यह है कि प्रोड्यूसर कम क्यों हैं। वे कल्चर को लेकर काम क्यों नहीं कर रहे हैं। वे

फिल्में क्यों नहीं बना रहे हैं।

यशपाल शर्मा – बताओ भाई मेरा भी यही सवाल है। मैं तो खुद ही यही चीज पूछ रहा हूं। मैं तो खुद ढूंढ़ रहा हूं। वाकई आपकी बात बिल्कुल सही है। क्योंकि प्रोड्यूसर बिजनेसमैन की तरह सोचता है कि मैं यदि 50 लाख लगाऊं तो 60 लाख तो मिलें। साठ ना मिले तो कोई अच्छा आदमी बोलै और 50 तो मिल ही जाएं। ऐसे हैं।

सवाल- : लख्मीचंद को सांग विधा को आगे बढ़ाने के लिए जाना जाता है। आज कल पर आप यूट्यूब का आपने जिक्र किया – बाली शर्मा, रणवीर बडवासणिया, रमेश करावडिया़। बड़ा दर्द होता जब यूट्यूब पर जाते हैं। वो जो सांग की विधा थी रागणी कंपीटीशन में तब्दील हुई। और रागणी कंपीटीशन में ऊपरां-तळी और बीच के जो चुटकुले। मेरा सवाल यह है कि लख्मीचंद के जरिये हरियाणवी संस्कृति को आगे बढ़ाणे की बात कर रहे हैं। तो सांग व आज के रागणी कंपीटीशन में कैसे सामंजस्य स्थापित करेंगे।

यशपाल शर्मा – इसमें किसका कसूर है। अगर गंदे गाणे हिट हो रहे हैं। छह लाख हिट उसको हैं। लख्मीचंद का जयलाल एक दोस्त था। दोनों बनारस या हरिद्वार कहीं गए थे। एक जगह साधु बाबा का उपदेश चल रहा था। बड़ी ज्ञान की बात बता रहा था। वहां 15 लोग बैठे थे। थोड़ी आगै गए तो वहां छोरी का डांस होर्‌या था। वहां भीड़ लगी हुई थी। सांग बेड़ा खोलण तै पहल्यां लख्मीचंद नै पूछ्या कि यो करैं या यो करैं। तो बोल्या कि या करैंगे तो ज्ञान तो बहुत होगा। इससे ना तो पैसे मिलेंगे और ना दर्शक आएंगे। वो करते हैं तो दर्शक भी खूब मिलेंगे और पैसे भी आएंगे। तो पहल्यां वो करते हैं। बाजे भगत ने कहा कि मेरी स्टेज पै तो चढ़िये जो ढ़ंग की रीति की और कोई तर्कसंगत बात कहणी हो। उस दिन उसनै सारे धर्म ग्रंथों का जो ज्ञान उसनै टीका शास्त्री व जागे राम शास्त्री से उस दिन के बाद उसनै वैसे सांग नहीं किए। सिर्फ ब्रह्मज्ञान और ज्ञान दिया।

मुझे यह नहीं पता कि आज जो फिल्में लोकप्रिय हो रही हैं। क्या कूल हैं हम, ग्रेट ग्रैंड मस्ती सौ-सौ करोड़ का बिजनेस कौन करवाता है बताओ। हरियाणा से भी गए होंगे दस करोड़ तो। हमारी पगड़ी की कमाई दो या तीन लाख रूपये है। आप बोलते हो ना कि हरियाणा में यह नहीं हो रहा, वह नहीं हो रहा। जो हो रहा है, उसे तो देख लो। इसका मतलब कहीं ना कहीं हम भी जिम्मेदार हैं। जो गाणे आप लाईक कर रहे हो, वे चल रहे हैं। वे इसीलिए चल रहे हैं क्योंकि जो फिल्मी धुन या डोली मंढ़ दे उसपै नोटां की बरसात हो जाती है। जब कोई क्लीन रागणी हो, पक्के साजां के साथ सही बात हो, वहां पे कईं बार लोग बोर भी हो जाते हैं। लेकिन लोग मनैं देखे हैं। चाहे जाटी कलां में हो, चाहे बरोणा में हो। कमाल कमाल की रागणी हुई हैं। मांगेराम का प्रोग्राम हुआ था रोहतक में। तीनों जगहों पर लास्ट तक इतनी पब्लिक आगी थी और उठी नहीं। यह भी मजा है कि हरियाणा में गाम की जनता ज्यादातर रागणी और सांगों को पसंद करती है। और शहरों की जनता हनी सिंह, गुरदास मान और बादशाह में खोई हुई है। अभी पता नहीं कब वो सही माहौल कब बणेगा। इस तरह शिद्दत से जैसे संवाद यहां हो रहा है, कम होता है ऐसा। मामा-भाणजा सब अपणी-अपणी गाकै चले जावैं सैं। सब लोग तानसेन हैं, कानसेन कोई भी नहीं है।

सवाल : अभी लेटेस्ट आपकी फिल्म आई थी – सतरंगी। जो मैंने देखी थी। उसमें कोई भी अश्लीलता नहीं थी। उसके बावजूद भी जितने लोग यहां बैठे हैं। ऐसी फिल्में ज्यादा से ज्यादा देखी जाएं। कोई भी हरियाणवी फिल्म हो, अच्छा-अच्छा थीम लेकर आती है। लेकिन वह क्यों नहीं देखी जातीं।

यशपाल शर्मा – आएगा टाइम मेरे भाई आएगा। कर रहे हैं कोशिश। किसी पे थोंप नहीं सकते। सभी लोग पूछते हैं कि यूट्यूब पर कब आवैगी। वैबसाइट पर कब आएगी। कितणा खर्च आ जावैगा। हम दो घंटे मांग रहे हैं। दो घंटे नहीं दे सकते हरियाणवी कल्चर को। ढाई घंटे नहीं दे सकते तो हमें लानत है। देखल्यो ना कोणसी। आपकी भी गलती नहीं है। परिवार के साथ देखी जा सकने वाली फिल्में कईं सालों से आ भी नहीं रही थी।

सवाल : हरियाणा में टेलेंट बहुत है। हरियाणा का यूथ चाहता है कि हम एक्टर तो बनें, लेकिन बिना एक्टिंग के। आपने एम.ए. थियेटर किया पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से। उसके बाद आप नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा गए। अगर आप एम.ए. थियेटर ना करते। अगर एन.एस.डी. ना जाते तो क्या आप एक्टर होते? हमारे यहां स्थिति यह है कि यूनिवर्सिटी में भी एम.ए. थियेटर नहीं है। हमारा यूथ जो चाहता है कि ताजी-ताजी जमीन बिकी है। या हमारा फेस देख के कोई हमें फिल्मों में ले लेगा। उसका क्या महत्व है। मैं यह जानना चाहता हूं क्योंकि आप यूथ आईकॉन हैं हरियाणा में। फिल्मों में हरियाणा की नुमाइंदगी कर रहे हैं। अगर आप एम.ए. थियेटर हो। उससे युवाओं को एक्टिंग सीखने का प्लेटफॉर्म मिले। हमारे यहां मल्टीआर्ट कल्चर सैंटर है। बड़ा अच्छा है कि यहां लोग ड्रामा देख पाते हैं। तो आपकी जो यह यात्रा रही। थियेटर से फिल्म इंडस्ट्री की। यह बताईये कि जो थियेटर का महत्व है। थियेटर की जो विधिवत शिक्षा है, वह अगर हरियाणा में हो तो मुझे लगता है कि हम अच्छे थियेटर और जो इंडस्ट्री में जाते हैं, उन्हें पैदा कर सकेंगे।

सवाल : आप कल्चर और अपने उद्देश्यों को लेकर मार्केट में जा रहे हो। जो मार्केट की मैनेजमेंट है। या मार्केट की रिक्वायरमेंट हैं। 'पगड़ी' फिल्म देखने गए। ऑडियेंस थी नहीं। ओडियेंस के जो अलग-अलग लेवल हैं। उनके सोचने के, उनकी मनोवैज्ञानिक भूख है। उनकी रिक्वायरमैंट हैं। कोई नॉलेज लेने जाता है। कोई एंज्वायमेंट करने जाता है। ऑडियेंस की डिजायरस पर भी तो काम होना चाहिए ना। आप उसे आर्कषित करने के लिए कैसा मैटीरियल बनाते हैं।

मैं यह चाहता हूं कि आज नए दौर में हमारे पास नई टेक्नीकल चीजें एडवांस हैं। अनुभव भी हैं। सभी चीजें मिलाकर काम किया जाए। हम जो उल्हाना दे रहे हैं कि हम मिल जुलकर काम करेंगे। यह आदर्शवादी बात है। हम रियलिस्टिक ढ़ंग से बाजार की मार्केटिंग को समझ नहीं पा रहे हैं। क्या हम केवल अपनी संस्कृति के नाम पर अपील करते रहेंगे। अपील क्यों करें। हमें अपनी तैयारी मजबूत करनी होगी।

यशपाल शर्मा – यदि कोई सत्यजीत रे बनना चाहता है तो उन्हें बनने दो ना। उसने कहां आस की, ना ही कभी शिकायत की कि मेरी फिल्म हिट नहीं हुई।

अगर मैं पब्लिक को ध्यान में रखकर मैं फिल्म बनाऊंगा तो मैं वैसा डायरेक्टर नहीं हूं। तो फिर मैं ग्रैंड मस्ती बनाऊगा। क्योंकि अधिकतर लोग तो उसी को देखते हैं। हिट करने के लिए आईटम सोंग रखूंगा।

तरीके अपनाऊंगा। फाइटिंग रखूंगा। क्या ऑडियेंस की मेंटलिटी को हम चेंज नहीं कर सकते धीरे-धीरे। टाइम लगेगा। मार्केट क्या होती है। ऑडियेंस ही तो है मार्केट। निर्भया कांड होता है। कौन जिम्मेवार है उसका। कैसी फिल्में हैं वो। कैसा साहित्य वो। कैसे यूट्यूब के गाणे हैं वो। कौन सी चीजें उसे उकसाती हैं। इन चीजों को। कांड जब हो चुका होता है तब हम सब मोमबत्ती लेकर जाते हैं कि भगवान उनकी आत्मा को शांति दे। लेकिन उसके लिए जिम्मेदार कौन है। क्या स्टार उसके लिए जिम्मेदार नहीं हैं। क्या एक्टरों की रेस्पोंसिबिलिटी नहीं है। क्या हम सब की जिम्मेदारी नहीं है। हम क्यों ग्रेट ग्रैंडमस्ती को सुपरहिट करवाएं। लानत है हमारे ऊपर। आज से नकारना शुरू कर दो ऐसी फिल्मों को। लानत है हमारे ऊपर यदि हम वही काम करने जा रहे हैं। यदि 'पगड़ी' व 'सतरंगी' जैसी अच्छी फिल्में बनाने जा रहा है तो आप यह शिकायत कर रहे हैं कि हम क्यों देखने जाएं। मैं कह रहा हूं कि धीरे-धीरे बदलाव आएगा। मैंने कौन सा बोल्या है कि यार यह गलत कर दिया कि यह हिट नहीं करवाई। किसी से शिकायत नहीं है। यदि मैं उसकी रेखा से छोटा हूं तो फूहड़ता की रेखा को छोटा नहीं करुंगा। मैं अपनी रेखा को बड़ा करुंगा, उसकी रेखा अपने आप छोटी हो जाएगी।

सही राम – मेरा सवाल है कि जो दंगल और सुल्तान फिल्में आई। इसे पोलिटिकल टर्मिनोलोजी में सफरिंग इंडिया और शाइनिंग इंडिया के रूप में व्यक्त किया जाता है। लेकिन मैं उसका इस्तेमाल नहीं करुंगा क्योंकि यह पोलिटिकल मंच नहीं है। एक फिल्म आई थी-बिजली का मंडोला। उसमें एक गुलाबी भैंस थी। मैं उसका सहारा ले रहा हूं कि यह जो हमें दिखाया जा रहा है दंगल और सुल्तान के माध्यम से। यह कहीं हमें गुलाबी भैंसा तो नहीं दिखा रहे हैं।

यशपाल शर्मा – मैंने वह फिल्म देखी नहीं है मंडोला वाली। मुझे थोड़ा बता दो कि उसमें क्या था। यदि कोई हमारी जमीन का इस्तेमाल कर रहा है, हमारे सब्जेक्ट ले रहा है। कोई बड़ा स्टार या डायरेक्टर तो उसमें क्या बुराई है। हरियाणा का नाम तो हो रहा है ना। लेकिन मेरी शिकायत यह है कि आपने ख्वाजा अहमद अब्बास का नाम भी लिया। मैं सुभाष घई का भी नाम लेता हूं हरियाणा के हैं। बहुत सारे लोग हैं अश्वनी चौधरी और हरविंद्र मलिक को छोड़ कर किसने हरियाणवी के अंदर काम किया है। मुझे बताओ। ओमपुरी जी ने एक फिल्म की थी सांझी। खाप भी की थी, लेकिन वह हरियाणवी नहीं हिंदी थी। बैकग्राउंड हरियाणवी था। मेरा यह कहना है कि सुल्तान और दंगल जैसी फिल्में बनती हैं तो हमारे लिए फख्र की बात है। लेकिन मेरी शिकायत इतनी है कि मैं कान मैं मैल देखर्या सूं और कुछ नी है। हाथी की, हाथी तो बढ़िया है। जिस गांव की कहानी है, उस गांव में शूटिंग क्यों नहीं कर रहे। यहां हमारा नुकसान हो रहा है। यहां के लोगों को क्यों ना रोजगार मिले। यहां के लोगों को एक्टिंग क्यों ना मिले। बस वही बात है। इसमें थोड़ा टाइम लगेगा। बस करते रहेंगे सकारात्मक सोच रखेंगे तो हो जाएगा।

सवाल : – फिल्मों में ह्यूमर को बहुत पसंद किया जाता है दर्शकों द्वारा। हरियाणा के ह्यूमर का तो तोड़ ही नहीं है। तो क्या यह सही है बात। हम इसे बहुत ज्यादा प्रोमोट कर सकते हैं।

यशपाल शर्मा – हरियाणा का ह्यूमर तो निकला ही नहीं है अभी किसी फिल्म में। हरियाणा में इतना ह्यूमर है। बस जा रही थी। मैं पीछे-पीछे पहोंच्या। बस थोड़ी सी चली थी। मैं पीछै-पीछै पहोच्या। पीरागढ़ी चौक पै। हाथ मैं सीटी टीटी खड़या था गेट पै। मनैं पूछ्या कि हिसार जावैगी। बोल्या-जावैगा की हुर्रर। गई। बात-बात मैं ह्यूमर है। इसका तो कोई जवाब ही नहीं है। लेकिन इसका सही से यूज नहीं हुआ। शक्ति कपूर ने भी- मेरे कन्ने चक्कू है। यह कौन सी हरियाणवी है। या जिन लोगों ने भी हरियाणवी बोली है। ढंग से नहीं बोली अभी तक। चलो 'दंगल' और 'सुल्तान' तथा 'तन्नु वेड्स मन्नु' को हम इसलिए सेल्यूट कर सकते हैं कि कोशिश कमाल की है। यह मत देखो कि बोली में यह है, फलाणा है। जैसा अब लेखन पर बात हो रही थी-बोली छोड़ द्यो। हरियाणा या हरियाणवी कोशिश अच्छी की है।

सही राम – हरियाणा में या दूसरी जगहों पर भी कोई चीज बहुत मकबूल हो जाती है तो। खेल में हरियाणा में दो-दो करोड़ रूपया इनाम मिल रहा है। या कोई फिल्म हिट हो जाएगी तो सरकारी लेवल पर फिल्म नीति बननी शुरू हो जाएगी। कोई अच्छा खिलाड़ी निकल जाएगा तो खेल नीति बनने की बात शुरू हो जाएगी। हो सकता है और मैं दुआ करता हूं कि आपकी फिल्म लख्मीचंद कामयाब हो। और उसके बाद फिल्म नीति बनने की शुरूआत हो तो उसके बारे में आप क्या कहेंगे।

यशपाल शर्मा – फिल्म नीति तो पहले ही बन जाएगी। दो महीने में। मैं उस पैनल में नहीं हूं लेकिन मेरा दोस्त है राजीव। 'पगड़ी' का डायरेक्टर, वह है। पता चलता रहता है कि क्या चल रहा है। दो या तीन महीने में अनाउंस हो जानी चाहिए। लख्मीचंद तो बाद की बात है।

सही राम – इससे जुड़ा मेरा सवाल यह है कि हरियाणा के एक क्रिकेटर बहुत मकबूल हुए हैं। उसको जमीन दे दी क्रिकेट एकेडमी खोलने के लिए। उस पर एक इंटरनेशनल स्कूल खुल गया और वहां पर

मिडल स्कूल तो छोड़िये, अपर मिडल क्लास के लोगों को भी एडमिशन मिलना मुश्किल है। कहीं इसमें भी ऐसा तो नहीं होगा। लोग जमीन ले जाएंगे, प्लॉट ले जाएंगे।

यशपाल शर्मा – मेरा भी डर यही है। लेकिन उसका पूरा ख्याल रखना चाहिए। अगर इसमें कुछ ऐसा होगा तो मैं तो लड़ूंगा। मैं तो तब तक पोलिसी नहीं लूंगा जब तक कोई और ना ले ले। मैंने बोला है कि मैं सरकार की कोई हैल्प नहीं लूंगा। क्यों, क्योंकि मेरे से नहीं चक्कर काटे जाते। मेरे से चापलूसी भी नहीं होती। कोई छाती ठोक कै देर्‌या है तो जरूर लूंगा। लेकिन मेरे से नहीं होता कि मनैं ऐसा करद्‌यो। मैं फिल्म ही नहीं बना पाऊंगा। मुझे लगता है कि राजनीति, जाति-पाति और रिश्तेदारी, जहां भी जुड़ गई ना। मैं पारशियल हो जाऊंगा फिल्म मैं। मुझे स्वतंत्र तौर पर काम करने में तकलीफ हो जाएगी।

रोशन वर्मा – इस सेशन की शुरूआत की थी ख्वाजा अहमद अब्बास के नाम के साथ की थी। वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हरियाणा से मुंबई में जाकर काम किया। अमिताभ बच्चन को सभी जानते हैं, लेकिन कोई यह नहीं जानता कि अमिताभ बच्चन को पहला ब्रेक हरियाणा के ख्वाजा अहमद अब्बास ने दिया।

हरियाणा के लिए सबसे पहली फिल्म बनी-बीरा शेरा। इस फिल्म को बहुत कम लोग जानते हैं। हरियाणा की फिल्मों की शुरूआत बहु रानी से मानी जाती है। 1973 में पहली फिल्म 'बीरा शेरा' आई, जोकि ब्लैक एंड व्हाइट थी। दूसरी फिल्म आई-हरफूल सिंह जाट जुलानी वाला। यह फिल्म पहली रंगीन फिल्म थी। उसके बाद 1983 में तीसरी फिल्म आई -बहु रानी। उसकी खासियत यह रही कि हरियाणा की जमीन के 39 कलाकारों का प्रयास था। उसके बाद फिल्म आती है-चंद्रावल। सुपर हिट के मामले में चंद्रावल पहली फिल्म थी। उसके बाद लोगों में फिल्म बनाने की धुन सवार हो गई। अपने घरवालों को फिल्म में लेना सहित अनेक प्रकार की गलतियां रहीं। गंभीरता से आगे नहीं बढ़ सके। अब फिल्म 'पगड़ी' आई है गंभीरता के साथ। गंभीर विषय को लेकर। 'सतरंगी' को लेकर अच्छा प्रयास हुआ। यशपाल जी ने पूरी तरह से मन बना लिया कि हरियाणा को उठाना है और हरियाणा के लिए जुट कर काम करना है। जो चीजें छूट गई थी, उन्हें दोबारा से इकट्ठे करना है और बहुत अच्छे से नेशनल और इंटरनेशनल तौर पर हरियाणा को प्रेजेंट करना है। वे हर टेलेंटिड व्यक्ति को साथ लेकर चल रहे हैं। मेरा कोई बड़ा योगदान नहीं है। एक किताब लिखी है-हरियाणवी सिनेमा-संदर्भ कोश। उत्तर प्रदेश से बड़े फिल्मी समीक्षक हैं। उनका कहना था कि हरियाणा में फिल्में बनी ही नहीं तो उन पर किताब कहां से आएगी। तो मैंने सोचा कि किताब लिखी जाए। जिसमें तारीखें हों। किस निर्माता निर्देशक ने कब क्या काम किया। वह काम शुरू किया। भाई जिले सिंह जी ने बड़ा हौंसला दिया कि हरियाणा की फिल्मों का इतिहास होना चाहिए। यदि कोई पूछे तो यहां के बारे में बताया जा सके। जिले सिंह की प्रेरणा और सुनीता डावर जी ने भी योगदान किया। 43 साल में बहुत ज्यादा तो नहीं 68फिल्में ही बना पाए। जिनमें से चार फिल्में पंजाब के निर्माता निर्देशकों ने फिल्में बनाई। हरियाणा के कलाकारों और निर्देशकों ने अपने बूते 64 फिल्में बनाई हैं। आशा है कि आने वाले समय में सौ-डेढ़ सौ फिल्में एक साल में बना पाएं। मेरी दूसरी किताब आ रही है, जोकि हरियाणा के सिनेमा पर ही है। दूसरी किताब में 1973 में पहली फिल्म से लेकर आज तक की फिल्मों के गीत स्टेप बाई स्टेप फोटोग्राफ के साथ देने जा रहा हूं। एक दिन बहुत ही अच्छे मुकाम पर होगा हरियाणा।

सम्पर्क-9466220145

राजेंद्र सिंह की कविता

घर सोप्पे अर कुए
ओड़े तै धक्के मार भजाये
ऊरे भी बिना बुलाये आगे
फेर भी घर ने अपणा मानै
न्यू क्यूकर यार भुकाए लागे !

इब्बो-ईब तो आये थे
अर इब्बे सी जाणा है
फेर भी इतने पचड़े हैं
या किसी सराय,यु थाणा है।

कमरां में देखो काँध खड़ी हैं
अर सारी कांधां पै झगड़े हैं
इनमें अगत भी समरी होंगी
पर इनमे भाग भी बिगड़े हैं।

घर ईंटों का,हर ईंट की कहाणी
कितने किस्से अणछूए हैं
हर घरके भीतर सोप्पे हैं
अर सोप्पयां मैं कुए हैं।

सम्पर्क-97297-51250

रामफल गौड़ की गजलें

दिल का हाल सुणाऊं क्यूकर
मुंह कै ताळा लाऊं क्यूकर

दरद आपणा लियें पड्या सूं
घर की हवा उडाऊं क्यूकर

फिरैं शिकारी मांस टोहवते
बेट्टी घरां बिठाऊं क्यूकर

बैडरूम म्हं बहू-बेट्टा सैं
भीरड़-तितैये ठाऊं क्यूकर

लिये बंदूख खड़े गरदन पै
राह की बात बताऊं क्यूकर

भाग-दौड़ नै ज्यान काढ़ली
मुरदे लोग हसाऊं क्यूकर

नाम कटै ना डंड मिलै ना
बालक पास कराऊं क्यूकर

रामफल लोग विदेस्सी होगे
राग देस का गाऊं क्यूकर

2

चाल्ली हवा खराब देस म्हं
रोज उतरती आब देस म्हं

पाणी दूध मिलैं टोह्या तै
लेल्यो किते सराब देस म्हं

घूम-घामकै वैरां आग्ये
राज्जे ओर नवाब देस म्हं

नकली सिकस्या डिग्री अफसर
रोज बिकैं बेस्याब देस म्हं

मुरदे डांगर गंदा पाणी
यैं सड़गे कुए तलाब देस म्हं

माणस हांडैं ठिर ठिर करते
पहरै यै पसु जुराब देस म्हं

आज जमान्ना इंटरनेट का
यैं बिकती नहीं किताब देस म्हं

खबरदार सियासतदान्नों
उमड़ै यैं जनसैलाब देस म्हं

बिन कदर रूळे सै रामफल
हीरे घणे नायाब देस म्हं

सम्पर्क-9466390825

राजनेता नहीं कलाकार होता है समाज का शिल्पकार-असगर वजाहत

□प्रस्तुति-अरुण कुमार कैहरबा

हरियाणा सृजन-उत्सव के समापन पर लेखक और प्रेरणा के स्रोत असगर वजाहत जी ने बातचीत की, वह सृजन उत्सव में दो दिन चली चर्चा का निचोड़ था। सभी सत्रों में स्वर यह था कि सरकारी सहायता के बिना पूरी स्वतंत्रता के साथ संस्कृति का निर्माण हो और एक सांस्कृतिक आंदोलन बने जो अपने ही पैरों पर खड़ा हो। हरियाणा के पचासवें साल में यह पहला सृजन उत्सव बिना किसी सरकारी सहायता और बिना किसी आडम्बर के संपन्न हुआ है। समापन सत्र में असगर वजाहत के साथ वी.एन.राय, एस.पी. सिंह, प्रो. राजेन्द्र चौधरी मंच पर रहे। धन्यवाद ज्ञापन किया एस पी सिंह ने। प्रस्तुत है असगर वजाहत का इस अवसर पर दिया गया वक्तव्य - स.

दोस्तो, बड़ी प्रसन्नता की बात तो यह है कि मुझे यह अवसर मिला कि मैं आपके सामने मौजूद हूं और अपनी दो बातें आप तक पहुंचाना चाहता हूं। क्षेत्र क्योंकि बहुत व्यापक है -साहित्य, नाटक सिनेमा, कलाएं। इसलिए मूल बात की ओर लौटना और मूल बात करना जरूरी होगा। समय भी क्योंकि बहुत कम है। उसका भी यह तकाजा है कि बात को संक्षेप में रखा जाए। पहली बात तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं। हो सकता है आप मुझसे सहमत ना हों कि समाज को दिशा-निर्देश, समाज को आगे बढ़ाने, समाज को विकसित करने, समाज का शिल्पकार राजनेता नहीं होता। कलाकार होता है।

कलाकार समाज को देता है और राजनेता समाज से लेता है। समाज शक्ति देता है, ताकत देता है राजनेता को और साहित्य, कलाकार, चित्रकार व अभिनेता वह समाज को ताकत देता है। यह अपने आप में महत्वपूर्ण बात है कि समाज को ताकत देने वाली कला की स्थिति हमारे देश व समाज में किस प्रकार की है। जोकि हम सब जानते हैं कि चिंतनीय है। बहुत ही चिंता की बात है। जो समाज को ताकत दे रहा है, उसका कमजोर किया जाना, उसका कमजोर होना। यह अपने आप में समाज की कमजोरी है। समाज को कमजोर करना है। इस समाज को कमजोर करने की प्रक्रिया को समझना है। इसके बाद समाज का सशक्तिकरण किया जाना चाहिए।

समाज और कलाएं प्रेमचंद ने कहा है कि लेखक, कलाकार मानव आत्मा का शिल्पी है। मानव आत्मा को आकार देने का काम कलाएं करती हैं। ताकत देने का काम कलाएं करती हैं। मैं आपको एक छोटा सा उदाहरण दूं- कुछ साल के लिए मैं विदेश में था हंगरी में। एक व्यक्ति से बात हो रही थी तो उसने कहा कि यह मेरा प्रिय कवि है। तो मैंने उससे जानकारी लेने के लिए वैसे ही छेड़ने के लिए पूछा - कि कोई कवि तुम्हें पसंद है या तुम उसे पढ़ते हो, लेकिन यह क्या कह रहे हो कि वह मेरा प्रिय कवि है। तुम्हारे बहुत निकट है वह। उसने मुझे उत्तर दिया- मेरा परिवार मुझसे अलग हो सकता है। मेरी नौकरी जा सकती है। मुझे बहुत बड़ी बीमारी हो सकती है। मुझे देश से निकलना पड़ सकता है। कई प्रकार की आपत्तियां आ सकती हैं। सब मेरा साथ छोड़ सकते हैं। लेकिन यह कवि मेरा साथ कभी नहीं छोड़ेगा। इससे जो मुझे ताकत मिलती है, वह पूरा जीवन मिलती रहेगी। इसको कोई मुझसे छीन नहीं सकता है। इतना बड़ा काम है जो कलाएं

करती हैं।

आप हम सब जानते हैं कि सांस्कृतिक विकास के बिना सामाजिक विकास नहीं हो सकता। जब तक कि मनुष्य के अंदर को हम विकसित ना करें। तब तक बाहर के विकास का कोई मतलब नहीं है। अफसोस की बात है कि हमारे यहां विकास के नाम पर केवल बाहरी विकास पर ध्यान दिया जाता है। नाली बनवाना, सड़क बनवाना, बिल्डिंग बनवाना इसको विकास माना जाता है। लेकिन लोगों की समझ, लोगों की सोच और लोगों की भावनाओं के विकास करने को विकास नहीं माना जाता। लेकिन यह बहुत ही दुख की बात है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे समाज में इस प्रकार की बहुत सी समस्याएं हैं।

अभी दिन में चर्चा हो रही थी – नाटक के बारे में। इस बारे में चर्चा हुई कि हिन्दी में नाटक के दर्शकों की कमी है। विशेष रूप से इन क्षेत्रों में। इस संबंध में मेरा केवल यह निवेदन है कि कलाकार या लेखक का काम केवल अपनी कला दिखाकर या केवल लिखकर पूरा नहीं होता। हम एक प्रकार के संवाद को शुरू करते हैं। जब हम कुछ लिखते हैं या करते हैं तो हम एक प्रकार के संवाद को शुरू करते हैं। उस संवाद का एक छोर हम हैं तो दूसरा छोर और लोग हैं। इन दो छोरों के बीच की कमी को कम करना हमारा काम है। यदि हम यह समझेंगे कि इससे हमारा संबंध नहीं है तो निश्चित रूप से हमें सदा शिकायत रहेगी। इस दूरी को कम करने के लिए कलाओं को एक प्रकार का अभियान बनना चाहिए। एक प्रकार का आंदोलन बनना चाहिए। जब तक सांस्कृतिक आंदोलन हमारे देश में नहीं बनेगा। सशक्त सांस्कृतिक आंदोलन जिसकी शुरूआत यह है, जहां हम बैठे हैं। इसी प्रकार से एक सांस्कृतिक आंदोलन नहीं बनेगा। तब तक ना टू-वे ट्रैफिक शुरू होगा और ना हमारे पास ऐसी संस्थाएं बनेंगी। जो हमें आगे ले जाएं, हमारा विकास करें।

आप देखेंगे कि आजादी के बाद हमें बहुत कुछ मिला। लेकिन जो कुछ हमसे छीना गया वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। हमसे यह कहा गया कि अब आप आजाद हो गए हैं। अब आपकी सरकार है, वह आपकी चिंता करेगी। अब आपको स्वयं अपनी चिंता करने की बहुत आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसके लिए हम हैं। आजादी से पहले जितने पब्लिक इनिशिएटिव थे। जनता मिलजुल कर अपने समाज, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति के लिए काम करते थे, वे काम पीछे चले गए हैं। यह सोचा गया कि अब तो हम आजाद हो गए हैं और अब हमारी सरकार हमारी संस्कृति और समाज के लिए ऐसे काम करेगी, जो हमसे उम्मीद की जाती थी पहले कि हम करें। लेकिन यह दरअसल एक रूप में पूरा नहीं हो पाया। लोगों की पहलकदमी कि आगे बढ़कर लोग कामों को अपने हाथ में लें। यह भावना धीरे-धीरे समाप्त होती चली गई।

दूसरी ओर हम जानते हैं कि सत्ता, चाहे जिसकी सत्ता हो, सत्ता का पहला उद्देश्य केवल सत्ता में बने रहना होता है। दूसरा उसका कोई बड़ा उद्देश्य नहीं होता। हर सत्ता यह चाहती है कि सत्ता में बनी रहे बस। सत्ता ने केवल अपनी चिंता की। और अपनी चिंता करने के अन्तर्गत उसने ऐसे समाज को निर्माण करना शुरू किया, जो उसकी सत्ता को चुनौती ना दे सके। ऐसा समाज कैसा समाज होगा? जो संस्कृतिविहीन समाज होगा। संस्कृतिविहीन समाज कभी कोई चुनौती खड़ी नहीं करता। कभी कोई सवाल नहीं पूछता, कभी कोई बात नहीं करता। क्योंकि उसके अंदर इतनी सामर्थ्य नहीं होती है कि वो सत्ता से किसी प्रकार का संवाद कर सके। तो सत्ता से संवाद करने की जो स्थिति बननी चाहिए, जो हमें दूर तक ले जाएगी, अभी बनना है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि मुख्य रूप से हमें यह मान लेना चाहिए हमारी समस्याओं का समाधान हमारे अलावा कोई नहीं करेगा, ना ही कोई कर सकता है। हम अपनी समस्याओं का स्वयं ही समाधान करें। इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। अगर किसी दूसरे रास्ते की आशा की जाती है तो वह भ्रम होगा। अगर किसी से दूसरे रास्ते की अपेक्षा की रही है। इसलिए संस्कृति के क्षेत्र में कलाओं के क्षेत्र में एक प्रकार की एकजुटता की जरूरत है। सरकारी सहायता के बारे में एक छोटी-सी घटना बताऊं – मणि कौल हमारे बहुत अच्छे मित्र थे। मणि कौल बता रहे थे-राजस्थान में वो अपनी किसी फिल्म की शूटिंग कर रहे थे तो एक किसान आया तो उसने कहा-क्यूंजी इसमें जो पैसा लग रहा है कि यह सब अपना पैसा लगा रहे हो। तो उन्होंने कहा कि यह तो सरकारी पैसा है, सरकार से मिला हुआ है। तो उसने कहा कि सरकारी पैसा तो गाजर की पपीहरी है। जब तक बजे तब तक बजाओ और जब ना बजे तो खा जाओ। उसे खा जाओ। जिस पैसे को इस रूप में लिया जाता है, तो क्या वो कलाओं के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण कार्य करेगी। बहुत सोचने की बात है। अगर करेगी तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन यह चेतना बहुत जरूरी है कि हमें अपनी समस्याओं का, हमें सांस्कृतिक धरोहर रखने का काम स्वयं करना है। एकजुटता उसके लिए हमारे अंदर आनी बहुत जरूरी है। यह कुछ मूल बातें थी, जो मैं चाहता था कि आपके बीच रखूं और इसके ऊपर और विचार हो।

सम्पर्क-9466220145

दयाल चंद 'जास्ट' की कुंडलियां

ईमानदारी जी रही, बेईमानी के बीच।
लालच की है खोपड़ी, मार्किट में कीच।
मार्किट में कीच, रही है सदियों पुरानी।
खरे हैं, जिनके ईमान, रही है उनकी निशानी।
कह दयाल लालच में मारें किलकारी।
कोने में बैठ के रोती है ईमानदारी।

वादे उसने बड़े किए, बड़े किए इज़हार।
पास बैठ के दूर रही, नहीं जताया प्यार।
नहीं जताया प्यार, प्यार में खोट नहीं है।
बड़े अदब से ना कही, दिल पे चोट नहीं है।
कह दयल हम खूब चलेंगे, लेकर नेक इरादे।
इज़हार में करे जो मिलकर, पूरे करेंगे वादे।

जग में बड़ा बुरा हूं मैं, अच्छा करूं दिन रैन।
अच्छाई के रास्ते में, मिले ना मुझको चैन।
मिले ना मुझको चैन, सच्चाई दिल की कहूं।
ढूंढी बुराई जग में, तो मैं ही सबसे बुरा रहूं।
कह दयाल नेकी के पथ पे, चलना पग-पग।
नेकी करूं, दिन रैन, मुझे ना बुरा कहेगा जग।

रामनाम लेते नहीं, मंदिर में ज्योति जलाएं।
ऐसे ढोंगी देश में, नित हलवा-पूरी खाएं।
नित हलवा पूरी खाएं, शर्म न लाज उनको।
कह दयाल कुछ चारा चले ना सुबहो-शाम।
मंदिर में राग अलापते, पर दिल में नहीं है राम।

सम्पर्क-94662-20146

आलेख

नासिर काज़मी
दर्द को शायरी में समेटने वाला शायर

□हैदर अली

उर्दू के बेहतरीन शायर नासिर काज़मी का जन्म 8 दिसम्बर 1925 को अम्बाला में हुआ। उन्होंने अम्बाला, शिमला व लाहौर में शिक्षा प्राप्त की। भारत विभाजन के बाद वे लाहौर चले गए। देश-विभाजन का दर्द उनकी शायरी में निरन्तर अभिव्यक्त होता रहा। 1952 में हुमायूं पत्रिका के संपादक बने। उर्दू शायरी में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। 2 मार्च 1972 को पेट में कैंसर की बीमारी से उनका देहांत हो गया-सं.

शहर दर शहर घर जलाए गए
यूं भी जश्ने तरब मनाए गए
वक्त के साथ हम भी ऐ नासिर
खार-ओ-खस की तरह बहाए गए

आधुनिक उर्दू शायरी का ये महान शायर प्रस्तुत पंक्तियों में अपनी जिंदगी के दर्द का यथार्थ बयान कर रहा है। अगर बंटवारा नहीं होता तो इसे कूड़े-कबाड़े की तरह बहाया न जाता और न ही अपना वतन अंबाला छोड़ना पड़ता। हालांकि विभाजन के बाद भी उसके हिस्से में पंजाब ही आया परंतु वह वो पंजाब नहीं था जहां उसने बचपन में ठोकरें खाकर चलने की अदा सीखी थी। अपनी मिट्टी से छूटने का दर्द किस कदर और कितना हो सकता है, ये शेर अपने अस्तित्व विहीन होने की कहानी स्वयं ही बयां कर देता है। जब वह अपनी हैसियत की तुलना खार-ओ-खस यानी कूड़े-कबाड़े से करने पे आ जाएं तो बस दुख की कल्पना ही की जा सकती है। सांप्रदायिक दंगों में इंसान की कीमत जानवर से भी कम हो जाती है। यही दर्द नासिर काजमी को हमेशा सताता रहा।

नासिर काजमी की शायरी से मेरी पहली मुलाकात प्रसिद्ध साहित्यकार असगर वजाहत के मशहूर नाटक 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नई' देखने के साथ हुई। यह कोई 2002-2003 की बात रही होगी। नाटक के एक पात्र के रूप में स्वयं नासिर काजमी थे। उनकी शायरी में मानवीय संवेदनाओं के ऐसे रूप को देख मैं चौंक उठा। मुझे उनकी शायरी सुनते हुए कई बार लगा जैसे यह दुख तो मेरे पूर्वजों का है और अब मेरा भी। यहां मैं यह भी बताता चलूं कि मेरे पूर्वजों का संबंध हरियाणा, पंजाब से है जो बंटवारे के दौरान उत्तर प्रदेश आकर बस गए थे। नासिर काजमी का संबंध भी अंबाला से है। उर्दू के किसी शायर द्वारा भारत-पाक विभाजन जैसे ज्वलंत विषय पर इतनी आत्मीयता और भावपूर्ण अंदाज में की जाने वाली शायरी से यह मेरा पहला परिचय था। अपनी तर्ज़ के इस अलबेले शायर से मेरा यह परिचय कब घनिष्ठ हो गया यह बता पाना मुश्किल है। बस मुझे इतना याद है जब मैं यह नाटक देखकर बाहर निकला तो कई दिनों तक एक अजीब सी कैफियत में डूबा रहा। नासिर काज़मी के बोल -

वक्त अच्छा भी आयेगा 'नासिर'
गम न कर जिंदगी पड़ी है अभी

मेरे कानों में गूंजते रहते थे और यहीं से नासिर काजमी को पढ़ने की ललक मुझे लग गयी। नासिर काजमी को पढ़ कर ऐसा लगा कि मेरी साहित्यिक चेतना जी उठी है।

नासिर काजमी का शुमार आधुनिक उर्दू के प्रतिनिधि शायरों में होता है और वरिष्ठ उर्दू आलोचक शम्सुर्रहमान फारूकी के शब्दों में ''अपने विशिष्ट पल में नासिर काजमी उर्दू गज़ल के बेहतरीन शायरों में से एक हैं।'' उर्दू शायरी की सब से लोकप्रिय विधा 'गजल' को नये आयाम देकर नासिर काजमी ने शम्सुर्रहमान फारूकी के कथन को सच साबित किया है।

नासिर काजमी उर्दू गज़ल की शानदार परम्परा का बहुत ही सलीक़े से अनुसरण करते हैं, बावजूद इसके उनकी प्रेम कल्पना जीवन के दुखों एवं सामाजिक बाध्यताओं से परे है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वह प्रेम पर आधारित शायरी करने के बाद भी कभी इस रास्ते से भटके नहीं। उन्होंने विभिन्न प्रकार से इस बात को चरितार्थ भी किया है कि यह उनके अन्तर्मन की आवाज़ है -

कुछ यादगारे-शहरे-सितमगर ही ले चलें
आए हैं इस गली में तो पत्थर ही ले चलें
यूं किस तरह कटेगा कड़ी धूप का सफ़र
सर पे ख़्याल-ए-यार की चादर ही ले चलें

नासिर काजमी की एक विशिष्टता यह भी है कि वह ख़ुदा-ए-सुख़न मीर की भांति अपनी आपबीती को जगबीती बना देने का हुनर जानते हैं। इतना ही नहीं वह अपनी व्यक्तिगत पीड़ा का बखान उस स्तर पर करते हैं जहां कोई इस दुख में शरीक नहीं हो सकता, न उसे फैला कर दूसरे लोगों तक स्थान्तरित कर सकता है। व्यक्तिगत दुख एवं पीड़ा की इस सतह पर पहुंच जाने के उपरान्त भी अपने आत्म सम्मान को ज़रा सी भी ठेस न लगने देना ही नासिर काज़मी की काव्य-शैली की असल पहचान है।

हिचकी थमती ही नहीं नासिर आज किसी ने याद किया है

++

मैं तो आज बहुत रोया हूं तू भी शायद रोया होगा

हम जिस अत्याधुनिक समाज में सांस ले रहे हैं, इस समाज में समस्त भौतिक सुख सुविधाओं से सम्पन्न होने के बावजूद इंसान एक अजीब से खालीपन का शिकार है। आज के जीवन की

सबसे बड़ी त्रासदी भी शायद यही है कि मशीनों के शहर में रहने वाला इंसान मानवीय संवेदनाओं से परे होकर खुद भी मशीन बन चुका है। ऐसे आलम में जब नासिर काज़मी अपनी शायरी के द्वारा आधुनिकता की भेंट चढ़ चुके इंसानी रिश्तों की अहमियत का अहसास कराते हैं तो महसूस होता है कि किसी ने दिल की दुनिया में हलचल मचा दी है –

जिन्हें जिंदगी का शऊर था उन्हें बे-ज़री ने बुझा दिया
जो गिराँ थे सीना-ए-ख़ाक पर वही बन बैठे हैं मोतबर

++

कल जिन्हें ज़िंदगी थी रास बहुत
आज देखा उन्हें उदास बहुत

नासिर काज़मी की गज़लों में रात और शहर का चित्रण विशेष रूप से किया गया है। विदित हो कि रात और शहर उनके यहां प्रेम के विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करते हैं। नासिर काज़मी रात के अंधेरे में उन चीज़ों को तलाश करते हैं जिन्हें दिन ने उनसे छीन लिया है या जो रौशनी में उनसे खो गई हैं। गुमशुदा चीजें उन्हें मिलती नहीं हैं बल्कि शायद वह खुद खो जाते हैं लेकिन इसके विपरीत रात शहर, और उसकी खामोशी गुमशुदा चीजों की तलाश की संभावना तो अपने अन्दर रखती ही है...

गुमशुदा चीजों से यहां शायर का तात्पर्य इंसानी रिश्तों से है जो दिन के उजाले में कहीं खो गये हैं। इन रिश्तों के खो जाने का अहसास जब शायर को अन्दर से विचलित करता है तो दर्द में डूबी ये रचनाएं वजूद में आती हैं –

बस इक मोती सी छब दिखा कर बस इक मीठी सी धुन सुना कर
सितारा-ए-शाम बन कर आया बरंग ख्वाब सहर गया वह
वह रात का बेनवा मुसाफिर वह तेरा शायर वह तेरा नासिर
तेरी गली तक हमने देखा फिर न जाने किधर गया वह

नासिर काज़मी का एक खास रूप हमें उन गज़लों में नजर आता है जहां उन्होंने क्लासिकी शायरी की सांस्कृतिक परंपरा का निर्वहन करते हुए ये साबित किया है कि कोई भी संजीदा (गंभीर) शायर अपनी रिवायात से अलग नहीं होता। इश्क-ए-हक़ीक़ी और इश्क-ए-मजाज़ी के बीच पाये जाने वाले छोटे से अन्तर को महसूस करते हुए जिस प्रकार नासिर काज़मी ने ईश वन्दना से प्रियतम की गलियों का सफर किया है, उनका ये अंदाज़ उन्हें समकालीन शायरी में अति विशिष्ट बना देता है:

जब मैंने लिखना सीखा था पहले तेरा नाम लिखा था
तूने क्यों मेरा हाथ न थामा मैं जब रस्ते से भटका था
पहली बारिश भेजने वाले मैं तेरे दर्शन का प्यासा था

इसी शायराना अंदाज़ और समर्पण के भाव के साथ जब वह अपने प्रियतम को याद करते हैं तो ये महसूस होता है जैसे दिल के सोए हुए अरमान जाग उठे हैं –

सचमुच तेरे जैसी आंखें वैसा ही हंसता चेहरा था
चांदी का वही फूल गले में माथे पर वहीं चांद खिला था

नासिर काज़मी की ग़ज़लों में एक रवानी (प्रवाह) है जो उनकी शायरी की मुख्य विशेषता भी है। शेर कहते हुए कहीं से भी ये प्रतीत नहीं होता कि वह अपनी तबीयत पर दबाव डाल रहे हैं या किसी प्रकार का विरोधाभास वहां मौजूद है। उनके शेर पौधों की तरह उगते हैं और फ़ज़ा रंग और रौशनी से प्रकाशमय हो जाती है। अलीम नवेदी के शब्दों में ''नासिर की गजलें मंझे हुए ज़ेहन की पैदावार हैं और जिनमें शायरी की तहज़ीब कूट कूट कर भरी हुई है। शेर उन्हें बिखरे हुए गुलदस्ते की तरह हसीन सूरत में नज़र आते हैं, जोकि शाइस्तगी का दर्पण मालूम होते हैं।''

विभाजन की दर्दनाक घटना ने उर्दू-हिन्दी साहित्य को समान रूप से प्रभावित किया। विभाजन के दौरान हुई मानवीय हिंसा एवं इंसानियत के क़त्ल जैसी दिल दहला देने वाली घटना ने उर्दू के जिन रचनाकारों को आत्मचिंतन करने पर मजबूर किया उनमें नासिर काज़मी का नाम महत्वपूर्ण है। यह त्रासदी केवल ज़मीन का बंटवारा नहीं थी, बल्कि इसने दिलों की भी जुदाई का ग़म सहने पर मजबूर कर दिया था। मुहब्बत के पैग़ाम को आम करने वाले इस शायर ने जब इस भयावह घटना को केन्द्र में रखकर अपनी कल्पना को उड़ान दी तो दर्द में डूबे ये नग़मे फूट पड़े –

फूल ख़ुशबू से जुदा है अबके
यारों ये कैसी हवा है अबके
वो तो फिर भी ग़ैर थे लेकिन
यारों काम अपनों से पड़ा है अबके

विभाजन के बाद नई ज़मीन, नये लोग, नई बातें उन्हें हमेशा पुरानी यादों से जोड़ती रही, अतीत की यादों और नई ज़मीन व ज़िंदगी के नये हादसों ने उन्हें दुख के समुन्दर में डुबो दिया। अपना वतन अपनी मिट्टी और अपने लोगों को छोड़ना पड़ा।

फिर उसकी याद में दिल बेक़रार है नासिर
बिछड़ के जिससे हुई शहर शहर रुस्वाई

नासिर काज़मी के अंदर और बाहर आए इस तूफ़ान ने उनकी दुनिया बदल कर रख दी। जब दुनिया सोती थी, नासिर जागता था। कबीर की तरह इसे भी दुनिया के मसले सोने नहीं देते थे – ''या तो वो जागे, जिसे नींद ना आए, या कोई मेरे जैसा जागे''। वही दर्द ''दुखिया दास कीबर है, जागै अरु रोवे''। नासिर काज़मी ने रात के जागने को बेदारी की दौलत बना लिया

रात भर जागते रहते हो भला क्यूं 'नासिर'
तुमने ये दौलत-ए-बेदार कहां से पाई

लेकिन अनोखा और निराला ये शायर इन विपरीत परिस्थितियों में भी चट्टान की तरह डटा रहा और सुबह-ए-उम्मीद की तलाश करता रहा –

दिल में इक लहर सी उठी है अभी
कोई ताज़ा हवा चली है अभी
वक्त अच्छा भी आएगा 'नासिर'
ग़म न कर ज़िंदगी पड़ी है अभी

नासिर काज़मी की एक विशेषता यह भी है कि वह अपने पूर्ववर्ती मीर तक़ी मीर की तरह अपने महबूब के हुस्न में खोकर व्यक्ति और समाज के दुख दर्द को भुला नहीं पाते और उन्हें महबूब के हसीन ज़ुल्फ़ों के दरम्यान भी व्यक्ति और समाज का ग़म परेशान करता है और वह इस नज़ाकत के साथ उस ग़म की व्याख्या करते हैं कि दिल के सारे तार बज उठते हैं। महबूब की यादों को उदासी से जोड़ना कमाल का बिंब है–

मुसलसल बेकली दिल को रही है
मगर जीने की सूरत तो रही है

हमारे घर की दीवारों पे नासिर
उदासी बाल खोले सो रही है

विदित हो कि उर्दू शायरी के इतिहास में यह पहला अवसर था जब किसी रचनाकार ने व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण इतने मादक रूप में किया। नासिर काज़मी का यह शेर ये भी दर्शाता है कि उन्हें अपनी कल्पना को वास्तविक रूप देने में कमाल हासिल था। मसलन जब वह प्रियतम से अपने सामीप्य को याद करते हैं तो शब्दों की जादूगरी दिखाते हुए प्रेम रंग में डूब जाते हैं-

खिड़की के धुंधले शीशे पे दो चेहरों का अक्स जमा था
तेरे शाने पर सर रख कर मैं सपनों में डूब गया था
यूं गुज़री वो रात सफ़र की जैसे खुशबू का झोंका था

++

दो रूहों का प्यासा बादल गरज-गरज कर बरस रहा था
दिल की कहानी कहते कहते रात का आँचल भीग चला था

इंसानी जज़्बात की बुलन्दी को स्पर्श करते ये ख़्यालात किसी अमर प्रेम कहानी का सारांश मालूम होते हैं। इसके बरअक्स जब प्रियतम से जुदाई के लम्हों को याद करते हैं तो-

याद है अब तक तुझ से बिछड़ने की अंधेरी शाम मुझे
तू ख़ामोश खड़ा था लेकिन बातें करता था काजल

जज़्बात की बारिश में भीग कर प्रस्तुत किए गए इश्क़ के ये नाज़ुक ख़्यालात नासिर काज़मी की शायरी को विशिष्ट बना देते हैं।

आधुनिकतावाद की कोख से जन्म लेने वाली विकास की परम्परा ने लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के साथ-साथ कुछ मूलभूत समस्याओं को भी जन्म दिया है। जैसे मानवीय मूल्यों का पतन, इंसानों की भीड़ में भी अकेला होने का अहसास और दिल के सुकून का खो जाना आदि। आधुनिक समाज की विडम्बना यह है कि यहां लोग एक साथ रहते हुए भी एक दूसरे से कटे हुए हैं तथा अजनबीपन का शिकार हैं, जहां रिश्ते सिर्फ बनावटी हैं। यहाँ इंसान रिश्ते-नातों की क़ीमत समझने के क़ाबिल नहीं रहा। ऐसे माहौल में सीने के अन्दर धड़कता हुआ दिल रखने वाला शायर हर पल घुटन महसूस करता है और बार-बार पलट कर अपने गांव की मासूम ज़िंदगी की तरफ़ देखता है-

मैं भटकता फिरता हूं देर से यूं ही शहर-शहर नगर-नगर
कहां खो गया मेरा क़ाफ़िला, कहां रह गए मेरे हमसफ़र

वह गाँव के प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही वह अपने प्रियतम की याद में खो जाता है। नासिर काज़मी की ये सुन्दर पंक्तियाँ इन्हीं दर्द भरे एहसासात की कहानी बयान करती है-

एक भूले हुए देश का सपना आँखों में घुलता जाता था
तेरी आहट सुनते ही मैं कच्ची नींद से चौंक उठा था
कितनी प्यार भरी नरमी से तूने दरवाज़ा खोला था
मैं और तू जब घर से चले थे मौसम कितना बदल गया था

प्रेम भरी शायरी के बीच देश बंटवारे की टीस, उसका दर्द हमेशा उनकी शायरी में बना रहा। इसलिए हम देखते हैं कि उनकी शायरी में रात, सपना, साया, पत्थर, जंगल, आग, वहम, रंज व ग़म, आंसू और उदासी जैसे शब्द बार-बार आते हैं। क्योंकि न उन्हें लाहौर में होने वाली बारिश अच्छी लगी और न उस मिट्टी से आने वाली ख़ुशबू। लगती भी कैसे वह उसकी अपनी मिट्टी (अंबाला, शिमला, लखनऊ) से अलग हो रही थी और उसमें वो खुशबू नहीं थी जो नासिर काज़मी को सुकून दे सके -

दिल को यूंही सा रंज है वरना तेरा मेरा साथ ही क्या था
किस-किस बात को रोऊं नासिर अपना कहना ही इतना था

नासिर काज़मी भारतीय उपमहाद्वीप की सदियों पुरानी गंगा-जमुनी तहज़ीब और इंसानी जज़्बात के बेहतरीन मुसव्विर हैं। इन्होंने अपनी भावनात्मक शायरी के ज़रिए टूटे हुए दिलों को जोड़ने की कोशिश की है। इस समय नफ़रत का जो माहौल मानवता के आंगन में बेशुमार कैक्टस बो रहा है ऐसे में मुहब्बत का पैग़ाम देने वाले इस शायर को न सिर्फ पढ़ना बल्कि आम करना बहुत जरूरी हो गया है-

उन्हें सदियों न भूलेगा जमाना, यहां जो हादसे कल हो गए हैं
जिन्हें हम देख कर जीते थे नासिर, वह लोग आंखों से ओझल हो गए हैं

45, टीचर्स हॉस्टल, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली-9990184757

■

राजीव कौशिक की कविता

जात तेरी ऊंची माना
छोटी मेरी जात सही
मैंने कब मांगा तुझसे
तेरा अधिकार मुझको दे दे ।

माना तू होगा स्वर्ण खरा
तेरा बहुत है दाम सही
मैं लोहे का औजार
मिट्टी सा मेरा भाव सही
मैंने अक्कड़ कर कब ये कहा
तू अपना दाम मुझे दे दे

जात तेरी ऊंची माना
छोटी मेरी जात सही

ग्रंथों में कर्म-व्यवस्था दी
फिर जात जन्म से आई क्यों
मेरा संघर्ष जीवन को आवश्यक जो
मैंने तुझको कब ये कहा
ये नभ की शान मुझे दे दे

जात तेरी ऊंची माना
छोटी मेरी जात सही

मैं दु:ख की मदिरा पीता हूं
तू मदिरा में दु:ख पीता है
मैं कंकड़ से सुख लेता हूं
तू महलों में भी रोता है
फिर सोच भला मैं क्यों मांगू
तू ये रसपान मुझे दे दे

जात तेरी ऊंची माना
नीची मेरी जात सही

मैं मिट्टी जो आधार बना
तू स्वर्ण जो निकला मिट्टी से
मिट्टी जो जीवन पैदा करती है
धरती पर सृजन को धरती है
तू रहे स्वर्ण मैं कष्ट में क्यों,
जो युद्धों का आधार बने
तू सोच भला क्या मांगू
तेरा सम्मान मुझे दे दे ।

जात तेरी ऊंची माना
और छोटी मेरी जात सही

सम्पर्क-9416322527

सृजन उत्सव : सांस्कृतिक-ऊर्जा का संचार

□विकास साल्याण

हरियाणा सृजन उत्सव में हरियाणा के साहित्य, सिनेमा, नाटक-रंगमंच, मीडिया, ललित कलाओं पर परिसंवाद हुए जिसमें विभिन्न पहलुओं पर गंभीर मंथन हुआ। कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें हिंदी, हरियाणवी, पंजाबी भाषा के चालीस से अधिक कवियों ने कविताएं पढीं। इस दौरान विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। इसमें गीत, रागणी, गजलें और नाटक-नाटिकाएं आदि शामिल हैं। इसमें चार नाटिकाओं का मंचन हुआ। विविध प्रणालियों में प्रस्तुति के साथ विषयों की विविधता भी रेखांकित करने योग्य है।

'आजाद परिन्दे' ग्रुप द्वारा नाटिका प्रस्तुत की गई, जिसमें मीडिया हाऊस व पत्रकारिता क्षेत्र की दुनिया का अंदर का सच सामने रखा गया। नाटिका में दिखाया गया कि बिकाऊ मीडिया किस तरह जनता को बेवकूफ बनाते हैं। जिसे खबर भी नहीं माना जा सकता उसे एक्सक्ल्यूसिव बनाकर घंटों टाईम पास करते हैं। दिखाने योग्य खबर होती है, उसको अनदेखा कर निकल जाते हैं। टीआरपी बढ़ाने के लिए दिखाते हैं। जो कुछ चैनल सच दिखाना चाहते हैं, तो उनके ऊपर पाबंदी लगाई जाती है। कहने को तो मीडिया को अभिव्यक्ति की आजादी कहते हैं, लेकिन वास्तविकता यही बताती है कि पत्रकारिता या मीडिया अभिव्यक्ति से कोसों दूर है। मीडिया सिर्फ व्यापारियों व उद्योगपति और राजनेताओं की कठपुतली बनकर रह गया है।

दूसरी नाटिका त्यागी आर्ट ग्रुप करनाल के द्वारा एकल नाटिका के रूप में प्रस्तुत की गई। इसमें इसके नायक का नाम भोला होता है, जिसके माता-पिता बचपन में गुजर जाते हैं और उसका पालन-पोषण उसकी चाचा-चाची करते हैं, परन्तु स्वार्थ की दृष्टि से। वह उसको शिक्षा नहीं दिलाते, बल्कि उससे अपने घर व खेतों का काम करवाते हैं और अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं। चाचा-चाची भोला का अपने स्तर पर शोषण करते हैं। नाटिका के माध्यम से यह बताया गया है कि यह शोषण भोला का नहीं है, बल्कि उस तमाम भारतीय जनता का है, जो शिक्षा से वंचित रह जाती है। अक्सर हमारे समाज में किसान, मजदूर आदि आते हैं, जिनका शोषण हर कदम पर दुनिया वाले करते हैं।

नाटक में अभिनय त्यागी आर्ट ग्रुप के निर्देशक प्रवेश त्यागी ने स्वयं ही बहु-पात्रों का अभिनय करके संभाला। बेहतरीन अभिनय और संगीत के साथ वह एक सफल प्रस्तुति थी, जिसने दर्शकों को जोड़ कर रखा।

उमंग स्कूल गन्नौर के बच्चों ने सफदर हाशमी के नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति दी। इसमें बच्चों द्वारा दिखाया गया कि देश में बहुत सारे बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। शिक्षा ग्रहण न कर पाने के कारणों पर नाटक के माध्यम से प्रकाश डाला। ज्यादातर बच्चे अपनी आर्थिक स्थिति के कारण शिक्षा नहीं ले पाते। गरीब मजदूर के पास घर में खाने योग्य गुजारा नहीं होता, ऐसे में बच्चे बचपन से आय जुटाने के दिहाड़ी-मजदूरी की तरफ धकेल दिए जाते हैं। नाटक का एक संवाद 'सरकारी स्कूल तो गांव से बहुत दूर है और प्राईवेट में पढ़ाने की औकात नहीं है' आज के समय में प्रासंगिक है।..जो वर्तमान समय में प्राईवेट स्कूलों द्वारा की जाने वाली मनमानी को दर्शाता है।

जतन नाट्य मंच व जन नाट्य मंच ने गीत व कविताओं के नाट्य रूपांतरण के माध्यम से दर्शकों का मन मोह लिया। विनोद सहगल ने हाली पानीपती की नज़म 'चुप की दाद' व 'माचिस' फिल्म का मशहूर गीत 'छोड़ आए हम वो गलियां...' गाया। ध्यान रहे कि यह गीत इनके द्वारा ही फिल्म में गाया गया है। सांस्कृतिक गतिविधियों में सुरेश भाणा, गीता राजथल ने समां बांधा, वो अपने-आप एक यादगार पल थे।

दूसरे दिन सृजन उत्सव के समापन अवसर पर जन नाट्य मंच कुरुक्षेत्र व जतन नाट्य मंच रोहतक ने कबीर की गज़ल 'हमन है इश्क मस्ताना, हमन से होशियारी क्या' को गाया, जिसने सृजन उत्सव से जुड़े सभी लोगों को एक नई ऊर्जा प्रदान की। ▪

अच्छे सिनेमा से अच्छे संस्कार-मनोज वाजपेयी

□प्रस्तुति - किशु गुप्ता

कुरुक्षेत्र के मल्टी आर्ट कल्चरल सेंटर में जिला प्रशासन, कुरुक्षेत्र, संस्कृति-सोसायटी फार आर्ट एंड कल्चरल डिवैल्पमेंट तथा मल्टी आर्ट कल्चरल सैंटर के संयुक्त तत्वावधान में 13 अप्रैल से 16 अप्रैल 2017 तक हरियाणा अंतर्राष्ट्रीय लघु फिल्म महोत्सव का आयोजन हुआ। प्रस्तुत है इसकी संक्षिप्त रिपोर्ट - सं.

हरियाणा में फिल्मोत्सव की शुरूआत हरियाणवी फिल्म जगत के लिए एक शुभ संदेश है। इस दौरान हरियाणवी फिल्मों के विभिन्न पहलुओं पर गंभीर चर्चा हुई। हरियाणवी फिल्मों के लिए दर्शकों की कमी के कारणों की पड़ताल के साथ-साथ कहानी, तकनीकी जानकारी, निर्देशन आदि तमाम पहलुओं पर मंथन हुआ। अधुनातन विषयों पर फिल्में बनाकर हरियाणवी सिनेमा को एक ऊंचे मुकाम पर पहुंचाने तथा हरियाणवी फिल्मों को हाऊसफुल करने के तरीके ढूंढे गए।

हिन्दी व हरियाणवी सिनेमा जगत की मशहूर हस्तियों जयदीप अहलावत, मेघना मलिक, यशपाल शर्मा, अखिलेन्द्र मिश्रा, सीता राम पांचाल ने इस फिल्म उत्सव में सक्रिय भागीदारी की। विभिन्न चर्चाओं में भाग लिया और अपने अनुभवों को सांझा किया।

फिल्म अभिनेता यशपाल शर्मा ने चर्चा के दौरान फिल्म दर्शकों को बताया कि फिल्म का अच्छा होना उसमे दिए गए संदेश से नहीं तय होता, उसमें और कई बातें देखी जा सकती हैं। संदेश से क्या होता है? संदेश तो सिगरेट की डिब्बी पर भी लिखा होता है कि तम्बाकू सेहत के लिए हानिकारक है, इससे कैंसर रोग होता है। यशपाल शर्मा ने फिल्मोत्सव में एक अभिनेता के तौर पर नहीं, बल्कि एक वालंटियर के रूप में अपनी मौजूदगी दर्ज करवाई।

इस क्षेत्र में कार्यरत 51 से ज्यादा अलग-अलग श्रेणियों में कलाकारों व फिल्मों को अवार्ड देकर सम्मानित किया गया। '93 नॉट आऊट' को बेस्ट फिल्म तथा फिल्म एंड टेलीविजन इंस्टीच्यूट रोहतक के छात्रों द्वारा निर्मित फिल्म 'दायरा' को बेस्ट स्टोरी, बेस्ट सिनेमेटोग्राफिक, बेस्ट आर्ट डायरेक्शन, बेस्ट फिल्म ज्यूरी, बेस्ट डायरेक्शन आदि पुरस्कार मिले। फिल्म अभिनेता सीता राम पांचाल व सतपाल पखर पुनिया को लाईफ टाईम अचीवमेंट अवार्ड से नवाजा गया।

महोत्सव में 12 देशों की 17 भाषाओं में 65 फिल्में प्रदर्शित की गई। समारोह के पहले दिन महोत्सव में सामाजिक फिल्में दिखाई गई। 15 अप्रैल को बच्चों से जुड़ी व युवाओं पर आधारित फिल्में दिखाई गई। 16 अप्रैल को आधुनिक सिनेमा से जुड़ी फिल्मों को दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया गया। फिल्म स्क्रीनिंग के पश्चात फिल्म पर चर्चा की गई। विशेषज्ञों और दर्शकों के बीच बातचीत के दौरान अनेक तथ्य सामने आए।

फिल्मोत्सव में प्रदर्शित फिल्मों के नाम इस प्रकार हैं हरियाणवी फिल्म - लाडो, तांडव, आऊच, मोक्ष, सामण, अम्मी, लिविंग आइडेल, कबूल, स्पेनिश फिल्म-कजा रायपिंडा, पंजाबी फिल्म- आन द बैटेन पथ, तेलगु फिल्म-निशीध, तमिल फिल्म- 93 नॉट आऊट, दायरा, फ्रैंच फिल्म- एटोन द डिसीजन, अनोखी, लाईफ आफ मुंबई, बाल फिल्में -चिल्ड्रन ऑफ हैवन (ईरानी फिल्म) आदि।

फिल्म स्क्रीनिंग के अलावा वीडियो सांग प्रदर्शन व प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। समारोह में फिल्म जगत के कलाकारों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया। हरियाणवी व विभिन्न भाषाओं के गीतों को प्रतियोगिता में शामिल किया गया।

फिल्मोत्सव के समापन में मशहूर अभिनेता व रंगकर्मी मनोज वाजपेयी ने कहा कि फिल्में देश की संस्कृति का संरक्षण और विकास करने का कार्य कर रही हैं। उनके अनुसार फिल्मों के माध्यम से ही देश को एक धारा में जोड़ा जा सकता है। सिनेमा ही किसी भी सामाजिक संदेश को जन-जन तक पहुंचाने का माध्यम है। सभी के सांझे प्रयासों/प्रयत्नों से फिल्म उद्योग में अच्छी फिल्में तैयार की जा रही हैं। इन फिल्मों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के हर पहलू को दिखाने का प्रयास किया जा रहा है। हरियाणा राज्य द्वारा फिल्मोत्सव जैसे समारोह, सिनेमा जगत को आक्सीजन देने का कार्य कर रहा है। मनोज वाजपेयी ने कहा कि अच्छा सिनेमा अच्छी किताब पढ़ने से भी बेहतर होता है। अच्छा सिनेमा देखने से अच्छे संस्कार मिलते हैं और सामाजिक कुरीतियों का अंत होता है।

आशा है कि यह फिल्म महोत्सव हरियाणवी फिल्मों के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम साबित होगा।

सम्पर्क-8199053970

लोक कथा

कंजूस बाणिया अर चातर बहू

किसे सहर मैं एक बाणिया रह्या करै था। उसकै धन-माया का कोए ठिकाणा नहीं था। ओ कंजूस इतणा था अक् पेट भराई रोटी भी नहीं खाया करदा। उसका बणज सहर मैं तो था ए नजदीक-नजदीक कै गामां मैं भी उसका धन ब्याज पै जा रह्या था। ओ ब्याज भी करड़ा लिया करदा।

एक दिन उसनै ब्याज उगाण खात्तर गामां मैं जाण की त्यारी करी। घरां कुहा भेजा अक् रास्तै खात्तर रोटी-पानी त्यार कर दें। उसके बेटे की बहू बड़ी समझदार थी। उसनै राह खात्तर रोटी बणादी अर झझरी मैं पानी घाल दिया। उसनै पाणी मीठा कर दिया कदे उसकै सुसरै नै बार-बार तिस ना लागै। झझरी अर रोटियां का झोला ले कै वा चाल पड़्या।

चालदे-चालदे ओ एक जंगल मैं पोंह्च्या तै रोटियां का टेम होग्या, उसनै भूख भी लाग्याई। एक पीपल तलै बैठ कै उसने रोटी खाल्यी, पाणी पीण लाग्या तै उसनै मुंह के पाणी लांदे-ए मिठास आया। उसनै ब्होत गुस्सा आया। सारा पाणी एक बिल मैं गेड़ दिया अर किरोध मैँ भरकै उल्टा-ए घरां आग्या अर बेटे की बहू तईं भुण्डी-भुण्डी सुणाई। वा कुछ नहीं बोली।

अगले दिन फेर उसने रोटी बान्ध दी अर पाणी की झझरी भर दी। उसै पीपल तले बैठ कै उसनै रोटी खाल्यी अर पाणी पीण लाग्या तै फेर मिठास आया उसनै किरोध मैं भरकै ओ सारा मीठा पानी उसे बिल मैं भर दिया। उलटे पाएं घरां आकै फेर उस बहू पै उलटी सीधी डाट मारी वा फेर भी चुप रही।

तीसरे दिन फेर रोटी-पाणी लेकै बाणिया चाल्या। उसै पीपल तलै जाकै उसनै रोटी खाई। पाणी पीण लाग्य तै फेर वाए बात, पाणी मीठा था, उसनै नहीं पीया, उसै बिल मैं भर दिया। गुस्से मैं भरकै उलटा चालण लाग्या तै उस बिल मैँ तौ एक काला सांप फूफांदा लिकड़्या अर बाणिए कै आगै डोरा (फण) ठाकै खड़्या होग्या। सांप देख कै बाणिया तो डरग्या। ओ कुछ ना बोल सक्या, उसका दम खुश्क होग्या। तै सांप बोल्या, 'बणिक पुत्तर मैं तेरी सेवा तै ब्होत खुश हूं, जो कुछ मांगणा हो मांग ले। बाणिए नै सांप आगै हाथ जोड़ लिए अर बोल्या सर्प देवता, घरक्यां तै सलाह करकै तड़कै मांगूंगा।'

बाणिया अपणै घर आग्या। सारी बात घर आली तै बताई। वा बोली अक् यो बरदान का मौका तो आपणी बहू का ल्याया होड़ा सै, उस तै पूछ कै मांगना चाहिए। बहू की सलाह ली तै वा बोली, 'न्यू कहियो सर्प देवता तै अक म्हारा धन म्हारा होज्या।' बाणिये के बात समझ मैं ना आई पर फेर भी दूसरे दिन सर्प देवता कै सामी जाकै बोल्या, 'सर्प देवता, म्हारा धन म्हारा होज्या' सर्प देवता बोल्या, 'या तो कोए खास बात नहीं, और कोए बड़ी मांग मांग ले।' बाणिया बोल्या, 'बस महाराज मेरी तो या-ए सै सबै बड़ी मांग' सर्प बोल्या, 'अच्छा जा तड़कै फेर से जगां आ जाइये।' बाणिए नै घरां आकै सारी कहाणी सुणा दी, तो बहु नै ओर फेर पक्का कर दिया अक् और कुछ ना मांगै, अपणी उसे मांग पै डट्या रहै।

बात या थी अक् उस बाणिए की सारी धन-दौलत उस सांप की बाहण कै गहणै पड़ी थी। ज्यांए तै ओ बाणिया उसनै खर्च नहीं सकै था। सांप अपणी बाहण कै घर्यां गया और सारा किस्सा सुणा दिया। पहल्यां तो उसकी बेबे नै कुछ नां-नुकर करी फेर अपणै भाई नै बचनां मैं बंध्या जाण कै बाणिए की धन-दौलत छोड़ दी। उसै बख्त बाणिया बड़ा खर्चवा होग्या अर ब्होत बड़ा सेठ बणग्या।

अगले दिन ज्यब ओ सर्पराज तै मिलण चाल्या तै बड़े ठाट-बाट तै अरथ मैं बैठ कै गया। सर्पराज कै सामणै जा कै बोल्या, महाराज मेरी तै वाए मांग सै। सर्पराज बोल्या, 'वा तै पहल्यां-ए पूरी हो रह्यी सै और कोए मांग हो तो बता' सेठ नै और कुछ ना मांग्या उसकी पूजा करकै अपणै घर आग्या, ईब उसका धन पहल्यां तै चौगणां होग्या अर ओ नगर सेठ बाजण लागग्या। सारा कुणबा बहू की बड़ाई करण लाग्या अर सारे सुख तै रहण लागग्ये। ■

हरियाणवी ग़ज़लें

जय भारद्वाज तरावड़ी

भूत बणे वणजारे लोग,
फिरते मारे-मारे लोग।

मैं कोरा सूं तू भी कोरा,
कोरे-कोरे सारे लोग।

झूठ बोलते-कुफर तोलते,
नहीं थके ना हारे लोग।

राजनीति के मोहरे बणगे,
गाम गली के सारे लोग।

दिल के तार तोड़ते देखे,
और करते बंटवारे लोग

थूक बिलोते हांड रहे सै,
वण कह थारे म्हारे लोग।

ना बेरा कित-पाड़ गए 'जय'
हुआ तो करते न्यारे लोग।

2

सिर प्ह धरे मरोड़ आ लिया,
गाम गली का ओड़ आ लिया।

कदे भेष, कदे खूंटे बदले,
आज बदल कह खोड़ आ लिया।

क्यूं खेड़ मारता हांडे सै तू,
आज बोहड़ इत ओड़ आ लिया।

उस रस्सी का किसा भरोसा,
जिस रस्सी म्हं जोड़ आ लिया।

झूठ पलौथी मार बैठ ग्या,
सच न्ह तोड़-मरोड़ आ लिया।

इत कुआ उत झेरा देख्या,
घणा कसूता मोड़ आ लिया।

नजर घुमा 'जय' देखले भाई,
सब क्यांऐ का तोड़ आ लिया।

सम्पर्क - 7206040102 ■

मन्नत

पत्थर को सिंदूर लगाकर
तेल में डुबोकर
जिसे समझा जाता है देवता
वह असल में होता है पत्थर

-सावित्री बाई फुले

निजी स्कूल शिक्षा के प्रति बढ़ रहा असंतोष

□दीपक राविश

किसी भी जागरूक एवं विकासशील समाज को शिक्षा-व्यवस्था पर लगातार विचार-विमर्श करते हुए से धारदार बनाने के प्रयास करते रहने चाहिएं। किसी समाज की शिक्षा-व्यवस्था जितनी चुस्त-दुरुस्त तथा समाजपयोगी होगी, वह समाज उतना ही सुखी तथा समृद्ध होगा। हरियाणा के स्कूलों में वर्तमान-सत्र का आरंभ पिछले सत्रों की अपेक्षा हलचल भरा रहा। समाचार-पत्रों में भी लगभग प्रतिदिन इस संबंध में कुछ समाचार पढ़ने को मिले। हरियाणवी समाज के लिए ये शुभ संकेत माने जा सकते हैं। स्कूली शिक्षा पर विचार-विमर्श की कम से कम एक शुरुआत तो हुई। समाज की सोच में आ रहे इस परिवर्तन के कारणों की पड़ताल करने तथा शिक्षा पर चल रहे इस विमर्श के महत्व को रेखांकित करने की आवश्यकता है।

हरियाणा में सन् 1990 के आसपास उदारीकरण की नीतियों तथा कुछ अन्य कारणों से निजी स्कूलों की तरफ लोगों का रूझान बढ़ना आरंभ हुआ। शिक्षा के प्रति सरकारों के उदासीन रवैये तथा सरकारी स्कूलों में कार्यरत अध्यापकों के गैर जिम्मेदाराना व्यवहार ने निजी स्कूलों को फलने-फूलने में काफी मदद की। एक तरफ सरकारों ने जहां शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे को हाशिए पर रखा, वहीं दूसरी तरफ सरकारी अध्यापकों ने भी वेतन को सुरक्षित आय का साधन समझ कर आमदनी के अन्य साधनों की ओर रूझान करना आरंभ कर दिया। ये कटु सत्य है कि सरकारी स्कूलों में कार्यरत अध्यापक भैंसों के व्यापार, प्रोपर्टी डीलिंग, ठेके पर जमीनें लेकर खेती तथा छोटी-मोटी दुकानदारी जैसे व्यवसायों में लिप्त रहे। इन कामों को करने के लिए वे स्कूल मुखियाओं से सांठगांठ करके स्कूलों से नदारद रहने लगे। अपने राजनीतिक रुतबे को बढ़ाने के लिए नेताओं की हाजिरी लगाने हेतु सरकारी स्कूलों से अध्यापकों का नदारद रहना भी आम बात थी।

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के समाप्त होते-होते सरकारी स्कूल खाली होने लगे तथा निजी स्कूल छात्रों से भर गए। सरकारी स्कूलों में सिर्फ समाज के आर्थिक रूप से कमजोर तबके के छात्र रह गए। सरकारी शिक्षा के विकल्प के तौर पर उभरी निजी शिक्षा की सीमाएं भी कालांतर में स्पष्ट होने लगी हैं। आधे-अधूरे मूलभंत ढांचे के होते हुए भी राजनीतिक पहुंच या भ्रष्टाचार के सहारे निजी स्कूल मान्यता लेने में सफल हो गए। कोई भी पूंजीवादी व्यवस्था, अधिक काम तथा कम वेतन को अपना ब्रह्म वाक्य मानती है। अधिकतर निजी स्कूल गैर शैक्षिक पृष्ठभूमि के लोगों द्वारा संचालित हैं। इनमें अधिकतर ठेकेदार, व्यापारी या राजनीतिक पृष्ठभूमि से हैं।

वस्तुओं के उत्पादन के मुकाबले शिक्षा एक संवेदनशील मामला है जो गहरी समझ की मांग करता है। गैर शैक्षिक पृष्ठभूमि से होने के कारण निजी स्कूलों के संचालक शिक्षा जैसे संवेदनशील क्षेत्र की नाजुकता को समझने में असमर्थ रहे। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो अधिकतर निजी स्कूलों में शिक्षकों को बेहद मामूली वेतन मिलता है, जबकि उनको लगभग सभी पीरियड लेने पड़ते हैं। ऐसे में शिक्षक न तो वेतन के मामले में संतुष्ट होते हैं और न ही उन्हें उचित आराम मिल पाता है। काम की अधिकता के कारण वे मानसिक रूप से परेशान भी रहते हैं। निजी स्कूलों के संचालकों से उन्हें वैसा मान-सम्मान भी नहीं मिल पाता, जैसा कि किसी शिक्षक को मिलना चाहिए। विद्यार्थियों के सामने ही संचालकों द्वारा उन्हें अपमानित कर देना भी आम बात है। सब मिलाकर निजी स्कूलों की कार्यप्रणाली किसी भी प्रकार से ज्ञान के हस्तांतरण के लिए पोषक नहीं बन पायी।

निजी स्कूल समय-समय पर की जाने वाली वृद्धि से अभिभावकों की जेबें तो ढीली करते रहे, परन्तु शिक्षा के स्तर में समुचित सुधार करने में असफल रहे। समय-समय पर सरकार द्वारा की जाने वाली भर्तियों के कारण योग्य तथा मेधावी शिक्षकों के सरकारी क्षेत्र में चले जाने से निजी स्कूलों को योग्य शिक्षक भी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाए। ऐसे युवा जिनका चयन सरकारी अध्यापक के तौर पर नहीं हुआ। उन्होंने बेहद मामूली वेतन होने के कारण निजी स्कूलों में पढ़ाने की रोजगार के अन्य विकल्पों जैसे बीमा, कृषि या दुकानदारी को अपनाना बेहतर समझा। आज हरियाणा में मजदूर को दिहाड़ी के चार सौ रुपए आसानी से मिल जाते हैं। वहीं अधिकांश निजी स्कूलों में शिक्षकों को पांच हजार रुपए महीने से अधिक नहीं मिल पाते।

वर्तमान समय में निजी स्कूल शिक्षा के प्रति बढ़ रहे असंतोष के दो मुख्य तात्कालिक कारण हैं। पहला समय-समय पर की जाने वाली फीस वृद्धियों से अभिभावकों पर आर्थिक बोझ निरंतर बढ़ रहा है। दूसरा निजी स्कूलों को सरकारी स्कूलों के विकल्प के तौर पर हाथों-हाथ लेने वाले अभिभावकों में शिक्षा के प्रति समझ बढ़ी है। इन अभिभावकों ने निजी शिक्षण संस्थानों द्वारा परोसी जा रही शिक्षा का विश्लेषण करना आरंभ किया तो उन्हें निराशा हाथ लगी। यहां यह बात स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि निजी स्कूलों के स्वरूप में भी पर्याप्त भिन्नताएं हैं। परन्तु इनमें प्रमुखता गांवों तथा कस्बों में चल रहे स्कूलों की है। इन स्कूलों में ही निजी स्कूलों में पढ़ रहे बच्चों की संख्या 80 प्रतिशत के आसपास है।

किसी राष्ट्र के नौनिहालों के लिए बेहतर शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। चाहे वो निजी हो या सरकारी। सन् 1966 में अस्तित्व में आया हरियाणा अपनी स्वर्ण जयंती मना रहा है। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि निजी तथा सरकारी दोनों तरह की शिक्षा प्रणालियां प्रांत के नौनिहालों के लिए बेहतर शिक्षा की व्यवस्था करने में पूरी तरह से सक्षम नहीं हैं। देश के अन्य प्रांतों की स्थिति भी हरियाणा से भिन्न नहीं है। निजी स्कूली शिक्षा में अन्य खामियों के अलावा सबसे बड़ी दिक्कत ये है वो सर्वसुलभ नहीं हो सकती। निजी शिक्षा प्रणाली में समाज में हाशिए पर रह रहे लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है।

सम्पर्क-9802583881

सरकारी विद्यालयों में शिक्षा का गिरता स्तर

□अमरजीत सैनी

शिक्षा ही मनुष्य को सही मायने में मानव बनाती है। समय परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्रों में बहुत परिवर्तन हुए।

सरकार ने शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए सरकारी विद्यालयों का निर्माण किया और निशुल्क प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था की। धीरे-धीरे निजी विद्यालयों का प्रार्दुभाव हुआ। शुरू में तो हर कोई अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों में पढ़ाते थे। इक्का-दुक्का ही निजी स्कूल थे। किंतु धीरे-धीरे सरकारी विद्यालय निम्न स्तर पर पहुंच गए।

सरकारी विद्यालयों के गिरते स्तर का ठीकरा सदा सरकारी स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों पर फोड़ा गया। किंतु वास्तव में अध्यापक इस स्थिति के लिए जिम्मेवार हैं या फिर सरकार स्वयं ही स्कूलों को बंद करने के मूड में है। अगर आंकड़े उठाकर देखें तो ज्यादातर निजी स्कूल किसी न किसी राजनेता से संबंधित हैं या तो वे किसी राजनेता के स्वयं के होते हैं या फिर नेताजी के किसी रिश्तेदार या मित्रों के।

जहां प्राइवेट स्कूलों में हर तरह की सुविधाएं विद्यार्थियों के लिए होती हैं वहीं सरकारी स्कूलों में न तो पीने के पानी का उचित प्रबंध होता है, न ही शौचालयों की साफ-सफाई के लिए सफाई कर्मचारी होता है। जहां निजी स्कूलों के प्रवेश द्वारा रंग-बिरंगे फूलों से आगंतुक का मन मोह लेते हैं, वहीं ज्यादातर सरकारी स्कूलों में माली की पोस्ट ही नहीं होती। अगर अध्यापक बच्चों की सहायता से फूल-पौधे लगवाते हैं। उन्हें गांव के बच्चे आकर तोड़ देते हैं, क्योंकि छुट्टी के बाद स्कूलों की देख-रेख के लिए चौकीदार ही नहीं होता।

जहां प्राईवेट स्कूलों में एक विषय के कई-कई अध्यापक होते हैं। वहीं सरकारी स्कूलों में ज्यादातर स्कूलों में स्टाफ की कमी रहती है। जो स्टाफ स्कूलों में पढ़ाता है उन्हें सही सम्मान व सुविधाएं नहीं दी जाती।

सरकारी स्कूलों के अध्यापक जैसे-तैसे करके बच्चों को स्कूलों में दाखिल करते हैं, वो भी गरीब परिवारों के बच्चे। उनको पढ़ाते हैं, उनको योग्य बनाते हैं। यहां भी सरकार अपना रूप दिखाती है। जो योग्य व बुद्धिमान बच्चे होते थे, उन्हें पहले नवोदय विद्यालय ले जाते थे, फिर आरोही स्कूल और अब उनसे भी बढ़कर शर्मनाक नियम 134-ए के तहत सरकारी स्कूलों के होशियार बीपीएल बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेजकर और उनकी ट्यूशन फीस का बोझ उठाकर सरकार क्या दर्शाना चाहती है। ये तो ऐसे ही हुआ, रोगियों को निजी अस्पतालों में इलाज के लिए भेजकर उनके इलाज का खर्च वहन करना। ये तो वही बात हुई 'कमाए कोई खाए कोए।' नर्सरी से बच्चों को पढ़ाता कौन, संभालता कौन? जहां निजी स्कूलों में नर्सरी कक्षाओं के लिए दो-दो अध्यापिकाएं एवं दो आया होती हैं, वहीं सरकारी स्कूलों में प्राईमरी स्कूलों में एक या दो अध्यापक ही नर्सरी से पांचवीं तक पढ़ाते हैं। न प्ले रूम न आया। स्कूलों में न सफेदी दस-दस साल होती है।

कभी-कभार सफेदी का ठेका दे दिया जाता है, जिससे स्कूलों की बाहरी दीवारों पर निम्न स्तर का पेंट कर खानापूर्ति हो जाती है। प्राईवेट स्कूलों में बच्चों को लाने व ले जाने के लिए वाहन हैं, जबकि सरकारी स्कूलों में दो-दो किलोमीटर प्राईमरी के छोटे बच्चे पैदल ही आते हैं। छटी कक्षा में साईकिल दी जाती है लगता है जैसे स्पेशल ऑर्डर देकर ऐसी साइकिलें बनवाई जाती हैं, जो साल भर भी नहीं चल पाती। स्कूलों के प्रबंधन के लिए एस.एम.सी. का गठन तो किया जाता है, किंतु ज्यादातर एस.एम.सी. प्रधान अनपढ़ होते हैं, जिन्हें अपनी शक्तियों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान ही नहीं होता।

जहां निजी स्कूलों में अध्यापकों को स्कूल में आने के बाद सिर्फ बच्चों को पढ़ाना एवं पढ़ाई से संबंधित कार्य करने होते हैं। वहीं सरकारी स्कूलों में अध्यापकों को डाक बनाना, सर्वे करना, कर्मचारी, आया, गेट कीपर और न जाने क्या-क्या काम करने पड़ते हैं। सरकारी स्कूलों में आज भी दीवारों पर काला पेंट करके ब्लैक बोर्ड बने हैं न पुस्तकालय है, न साईंस लैब, न कम्प्यूटर लैब है, न Sickroom न योगा रूम, न खेलने के लिए उचित सामग्री एवं कोच। बच्चों के बैठने के लिए या तो बैंच हैं ही नहीं, अगर हैं तो इतने निम्न स्तर के कि बच्चे सही से बैठकर काम नहीं कर सकते। सरकारी स्कूलों की इमारतें जहां जर्जर हालत में हैं, वहीं निजी स्कूलों की आसमान को छूती इमारतें, जिनमें परदे एवं ए.सी. तक लगे होते हैं।

निजी स्कूलों में हर तरह की सुविधाएं बच्चों को दी जाती हैं। वहां केवल क्रीम जाती है। सरकारी स्कूलों में अध्यापक लस्सी बिलोकर मक्खन निकालने की कोशिश करते हैं और जो मक्खन निकलता है उसे भी निजी स्कूल ले जाते हैं। निजी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के माता-पिता का शैक्षणिक स्तर भी आंका जाता है, जबकि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के माता-पिता ज्यादातर अनपढ़ होने के कारण गृहकार्य करवाने में बच्चों की मदद नहीं कर पाते। जहां निजी स्कूलों के बच्चे ट्यूशन पर निर्भर होते हैं, वहीं सरकारी स्कूलों के बच्चे पूरी तरह अपने अध्यापकों पर निर्भर होते हैं।

अगर सरकार सरकारी विद्यालयों का उत्थान करना चाहती है तो अध्यापकों पर दोषारोपण करना छोड़ कुछ फैसले ले, जिससे सरकारी स्कूलों का स्तर सुधर सके। जैसे सरकारी स्कूलों में आधारभूत सुविधाएं मुहैया कराए, स्टाफ की कमी पूरी की जाए, अंग्रेजी एवं हिन्दी दोनों शिक्षा के माध्यम होने चाहिएं, सभी सरकारी खजाने से तनख्वाह लेने वालों के डीसी से लेकर पीयन-स्वीपर तक के बच्चे सरकारी स्कूलों में दाखिल होने चाहिएं, सरकारी नौकरियों में सरकारी विद्यालयों से पढ़े-लिखे युवकों के लिए कोटा निर्धारित होना चाहिए। सरकारी अध्यापकों को उचित सम्मान दिया जाना चाहिए। तभी सरकारी विद्यालयों का स्तर सुधर सकेगा।

गांव रामसरन माजरा(कुरुक्षेत्र)-94664-87839

■

'दाई'

दलित स्त्री के जीवन की महागाथा

□अनिता भारती

भारत की सत्तर प्रतिशत आबादी गांव में निवास करती है। इस आबादी के पास शिक्षा से लेकर स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं का नितांत अभाव है। अशिक्षा, गरीबी और अज्ञानता के साथ-साथ मौलिक सुविधाओं के अभाव में ग्रामीण समाज ने जीने खाने और रहने के अपने तौर तरीकों का विकास अपने तरीकों से कर लिया है। ऐसे ही तौर तरीको में, गांव में अस्पताल या स्वास्थ्य केन्द्र के अभाव में गांव की तमाम महिलाओं को प्रसव कराने वाली दाईयां होती थी, जो शिशु का जन्म दिलवाने से लेकर जच्चा-बच्चा के स्वास्थ्य का भी ध्यान रखती थी। यदि गांव में दाईयां जच्चा बच्चा की बागडोर नहीं संभालती तो न जाने कितने शिशु और माँ की जानें हर महीने काल कलवित होती रहती।

दाई के पेशे और हुनर में तेज यह महिलाएं जिन्हें आज भी समाज दाई या दाई माँ के नाम से जानता है, अधिकांश उनमें से दलित महिलाएँ होती थी और अभी भी हैं। दाई समाज ने देश में स्वास्थ्य सुविधाओं के समानान्तर अपनी सेवाएं देकर, उसकी रीढ़ की हड्डी बनने का काम किया है। इसमें कोई शक की गुजांईश नहीं बचती कि निम्न वर्ग से आई प्रसव कला में दक्ष इन दाईयों ने सालों साल सुरक्षित प्रसव भी कराएं है।

एक दाई की जिजीविषा, उसके संघर्ष, उसके अंदर बैठी सृष्टि रचने जैसी सृजनात्मकता, नवजात बच्चे के प्रति उसकी मोह-ममता, उसके त्याग परिश्रम और लगनशीलता को युवा उपन्यासकार टेकचंद ने अपने उपन्यास दाई में रेशम चरित्र के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया है। रेशम एक दाई न रहकर पूरे दाई समाज की जातिवाचक संज्ञा बन जाती है। रेशम बचपन से अत्यंत साहसी है, खिलंदड है, वाकपटु है, खुशमिजाज है। एक अच्छी नर्स, अच्छे डॉक्टर, एक अच्छे मित्र के गुण उसमें कूट कूट कर भरे हैं। रेशम का जीवन एक दलित स्त्री के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सम्पूर्ण जीवन का आख्यान है। एक पत्नी और एक माँ के रुप में दाई रेशम ने हमेशा दुख पाए। पति जुआरी और शराबी निकला तथा रेशम के लड़के भी अपने बाप की राह पर चलते हुए शराबी और जुआरी निकले। जीवन भर पति और बच्चों को मशीन की तरह कमाकर खिलाने के बाद भी रेशम दाई अन्त समय में जिस आर्थिक विपन्नता से गुजरती हुई मर जाती है वह हमारे नैतिकता की पट्टी पढ़ाने वाले समाज के लिए अत्यन्त शर्मनाक है।

रेशम दाई उपन्यास के कथा नायक की रिश्ते में बुआ लगती है, कथा नायक रेशम दाई के चरित्र से अत्यंत प्रभावित है। वह रेशम दाई अर्थात अपनी बुआ के किस्से कहानियां सुन सुनकर बड़ा हुआ है। शायद यही वजह है कि दाई उपन्यास का पूरा कथानक रेशम के बचपन से लेकर उसकी मृत्यु तक उसके इर्द-गिर्द घूमता है।

उपन्यास की नायिका रेशम बचपन से विद्रोही है। रेशम को लड़कों की तरह कपड़े पहनकर खेलना-कूदना, तितली, बर्रे पकड़ना, गाय भैंसों के पीछे भागना आदि उसका शौक है। जोखिम भरे कामों से लेकर मां-पिता के कामों में बढ़-चढ़कर हाथ बंटाना रेशम का चरित्र है। परिवार में जब सुअर पालने की बात आती है तो वह विरोध कर गाय भैंस या बकरी का बच्चा पालती है, जिससे घर में पैसा आता है। रेशम का चरित्र बहुआयामी है उसे नाचने, गाने से लेकर गांव देहात के सारे काम आते हैं। रेशम को माता-पिता भाई-बहनों और गांव-समाज से जितना प्यार-दुलार मिला, उतनी ही पति से प्रताड़ना मिली। पर रेशम उस प्रताड़ना की परवाह किए बगैर अपने स्वाभिमान, आजादी और मेहनत से अपना आनंद से जीवन बिताती रही ।

रेशम एक इज्जतदार दाई है जिसके पहुंचते ही प्रसूताओं को चैन पड़ जाता है। गांव की गर्भवती स्त्रियों को लगने लगता है कि अब उनका जीवन और उनका बच्चा सुरक्षित हाथों में है। इसी भरोसे को कायम रखते हुए गांव में रेशम न जाने कितने प्रसव करा चुकी है। गांव के सारे बच्चों का जन्म उसके ही हाथों से हुआ है। जब गांव के लड़के एक दलित बच्ची को छेड़ते हैं तो रेशम ने भी लटठ उठाकर पूरा मुकाबला किया। उत्पीड़न और हिंसा की इस घटना पर अपना दुख व्यक्त करते हुए रेशम अपने भाइयों से कहती है- 'सारे ई तै मेरे हाथां के पैदा करे ओड थे,....पर नसे और छोह(गुस्से) मैं थे...कमरा अर पावां पर लट्ठ मारे जिब भाज्जे.....(पृ-38)'

अनपढ़ रेशम को समाज और इंसान के स्वभाव में आ रहे परिवर्तन की खूब पहचान और समझ है। उसे अपने दाई के हुनर का पूरा ज्ञान है। वह जानती है पैसे वालों और नव धनाढ्यों की दुनिया कैसे बदल रही है और कैसे अस्पतालों के डॉक्टरों का लोभ दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है- 'ये डाग्दर तै नपूतै ढेड़ पेट पाड़ के रपिये बणावैं से (पृ.42)' 'बालक मानते ई कोन्या....ले हैं अर बहु नैं ठा (उठा) के डाग्दर के भाज लिए.. के फैदा होया? दोन्नूं बार बड्डे परेसन होये....न्यू जाण ल्यो अक बालक मोल पड़गे.....इतनी रकम लागगी नरसिंग हूम मैं......ऊपर तै बहू आज तक दुख पा री है....(पृ-42)

रेशम नाते-रिश्तेदारों की शादियों की जान है, जब तक रेशम नहीं पहुंचती शादी-विवाह में जान नहीं आती। दलितों की शादी में जब बारात लड़की के घर चली जाती है तब खोईया होता है इसमें रात भर औरतें नाच गाना मस्ती करती है। स्त्रियाँ तरह-तरह के रूप धरकर खासकर मर्दों के रूप धरती है और मर्दों की खूब खिल्ली उड़ाती है। खोईयां की जगह मर्दों का प्रवेश निषिद्ध होता है। यहां तक की छोटे लड़कों को भी नहीं आने दिया जाता। ऐसे ही एक खोईया में कथा नायक रेशम के खोईयां में खेले गए चरित्र का वर्णन करते हुए कहता है-

'रेशम मर्द की एक्टिंग में माहिर है वह अंग्रेज मर्द बनती है और अपनी ऊट पटांग अंग्रेजी से सबको हँलाती है हम तुमको गोले मारटा... ऐंडर...पैंडर...गैंडर लंडन से आटा' शब्दों का उच्चारण ऐसा कि अंग विशेष की परिभाषा ध्वनित हो। शादी से

पूर्व की रात को होने वाले गीत संगीत में जमकर नाटक बाजी करती। ऐसे ही एक कार्यक्रम में वह औरतों के झुंड में अपना स्पेशल आइटम सूट टू पीस बिकनी, घुटनों तक बूट सिर पर चौड़ा हेट जो चेहरा ढक लेता था, और नकली बंदूक लिए अंग्रेजी में हिन्दी बोलकर भाषण सा दे रही थी।

रेशम दाई कभी किसी से न हारने वाली, किसी के दाब-दबैल में न रहने वाली, अपने पैरों पर खड़ी बचपन से लेकर बुढ़ापे तक पूरे परिवार को पालने वाली, सारी जंग जीतने वाली अपराजेय यौद्धा अंततः अपने शराबी पुत्रों से हार जाती है। 'रेशम' दाई की कहानी दाईयों के जीवन और उनके पेशे से गुजरते हुए एक दलित स्त्री की महागाथा बन जाती है। इस महागाथा को सलीके से बुनने में लेखक ने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। हरियाणवी भाषा का प्रयोग दाई उपन्यास को आंचलिकता प्रदान करता है। पूरे उपन्यास में भाषा एक चित्रमयी खिड़की की तरह खुलती है जिसमें कहीं तो निश्छल हंसी, उत्साह, उत्सव, दादी, चाचियों, भाभियों के चौबारे हैं, तो कहीं दाईयोँ के महत्व को धीरे-धीरे खत्म करने की कगार पर खड़े नित नये खुलते महंगे नर्सिंग होम से उपजी निराशा और हताशा झलकती है। आज बेशक पांच मई को दाईयों के लिए एक दिन तय कर दिया गया हो पर वास्तव में गांव देहात की यह कुशल कलाकार, नवजीवन देने वाली हाथों की जादूगर दाईयां धीरे-धीरे खत्म हो रही है या उपेक्षा की शिकार होकर मर रही है, जैसे रेशम दाई मर रही है और उसकी कला और कौशल भी मर रहा है।

युवा दलित साहित्यकार टेकचंद ने अपने पहले उपन्यास 'दाई' में भारतीय दाईयों और उनके माध्यम से भारतीय दलित महिलाओं के जिस जीवट भरे चित्र और चरित्र को उकेरा है वह दलित साहित्य और समाज के लिए बहुत मानीखेज उपलब्धि है। इससे भी ज्यादा मानीखेज यह है कि उपन्यासकार टेकचंद ने दलित स्त्रियों के समाज में योगदान का कृतज्ञता भरा जो आख्यान रचा है उसकी धमक दूर तक और देर तक सुनाई देगी। विश्वास है कि 'दाई' उपन्यास अपने पूरे दम खम के साथ दलित साहित्य में अपनी पहचान बनाने में कामयाब रहेगा।

उपन्यास का नाम- दाई

प्रकाशक- वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ.-72

सम्पर्क-9899700767

पाठक पाति

सम्पादक महोदय, मैंने देस हरियाणा पत्रिका का मार्च-अप्रैल 2017 का अंक पढ़ा। देश विभाजन के दौरान मानवता का सुख चैन किस हद तक चकनाचूर हुआ। एक-दूसरे के जीवन को बचाने के लिए हिन्दू-मुसलमान लोगों ने अपनों से ही लड़कर जीवन देना पड़ा। ताने सहने पड़े, विपरीत स्थितियों में जीना पड़ा। सम्पादकीय के बहाने संपादक ने पूरी पत्रिका में भारत-पाक संबंधों को उजागर कर दिया है। अगर मैं आज के संदर्भ में देखता हूं तो यह अंक दोनों देशों को भावनात्मक रूप से जोड़ता है तथा कथित कट्टरता को ध्वस्त करता है। लोगों का दर्द छलका है और उन आंसुओं ने राजनीतिक महत्वाकांक्षा को आड़े हाथों लिया है। ये विभाजन राजनीतिक था, सांस्कृतिक नहीं, दिल आज भी एक-दूसरे के लिए तड़पते हैं।

सरदार जी, भगवाना चौधरी वो रात को लाहौर चले गए, रेलगाड़ी कहानियों ने बंटवारे की महाभारत के हर फलसफे को छुआ है। लूटपाट, डकैती, हत्याएं, बलात्कार, चारों ओर लाशों के ढेर रोंगटे खड़े कर देने वाले हैं, पढ़ते-पढ़ते रोना आ गया।

दोनों देश सद्भावना से इकट्ठे रह सकते थे, लेकिन साम्प्रदायिक माहौल ने सब छीन लिया। उर्मिल मोंगा की धुआं, डब्ल्यू.एच.ऑडेन की रैडक्लिफ लाइन, हरभगवान चावला की रक्त में जगह, निदा फाजली, साहिर लुधियानवी, अज्ञेय जी की कविताओं ने साम्प्रदायिक समस्या को जोरदार प्रतिक्रिया दी जोकि मानवता के लिए सराहनीय है।

ज्ञान प्रकाश विवेक, रामकिशन राठी के संस्मरण तथा नानकचंद, हरिचंद गणहोत्रा, जट्टू राम गोपाल राम अरोड़ा के साक्षात्कार जीवन की तलाश करते हुए नजर आते हैं। आलेख में 'अवाम का कवि उस्ताद दामन' जिंदगी के टुकड़ों की सिलाई करके रिश्तों को जोड़ने का कार्य कर रहे हैं। आंखिन देखी में फसाद की इब्तिदा, विपिन सुनेजा की कुछ सुनी हुई, कुछ देखी गई में जुबान में मैत्रीपूर्ण व्यवहार और सकारात्मक सोच के लिए प्रयास करती है।

यात्रा में-एक भारत से दूसरे भारत की ओर मुझे सब याद है जरा जरा जरा...। मानवीय मूल्यों के रक्षक भी थे। कुछ लोग अमृत लाल मदान, महेंद्र प्रताप चांद, उदय भानु हंस जी रिश्तों का समान एक देश से उठाकर दूसरे देश में रखते हैं। अपनों को अपना बनाने का काम करते हैं।

पुस्तक समीक्षा-राजेंद्र सिंह की, भूल गई रंग चाव, ए भूल गई जकड़ी लोक रूप का उत्सव मनाती हुई प्रतीत होती है, लेकिन परिवार की जिम्मेदारियों में सिमट कर अपनी मिट्टी तथा संस्कृति को भूलने से असली नायक नहीं बन पाता। ओम सिंह अशफाक उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, बोलते-बतियाते और सोचते-बतियाते, मानव विकृत विकास के लिए जो जाल बुना गया, उसको तोड़ने का प्रयास करते हैं।

दलित चिंतन में-डा. आम्बेडकर और विभाजन शीर्षक नाम से सुभाष चंद्र ने स्पष्टता के साथ लिखा कि आम्बेडकर न तो मुस्लिम-विरोधी थे और न ही धर्म के आधार पर देश के विभाजन के विचार के समर्थक थे। पाकिस्तान और पार्टीशन ऑफ इंडिया पुस्तक में दो राष्ट्रों के भविष्य पर चिंता प्रकट की गई। महात्मा जोतिबा फूले के अनुसार, 'किसी को भी किसी धर्म से नफरत नहीं करनी चाहिए।'

राजेंद्र सिंह सोमेश का देश विभाजन में हरियाणा, डा. विजय विद्यार्थी के हरियाणा के पचास साल : भविष्य के सवाल, टेक चंद की पोप कल्चर में बदलती देहभाषा और पितृसत्तात्मकता ने बदलते परिदृश्य पर समाज सपना के इशारों पर नाचता है। साथ ही पुरुष वर्ग का चरित्र खुलकर सामने आया है। रामकिशन व्यास की रागनी कम्मो-कैलाश सांग से भारत-पाकिस्तान में रहने वाले युवाओं की प्रेम कथा है। मुंशी राम जांडली की रागनियों ने पत्रिका की शोभा को बढ़ाया है।

इस अंक में मुझे जो पढ़ने को मिला संवेदनशील तथा प्रेरणाप्रद लगा। नफरत के राजनीतिक अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का काम कर रही है देस हरियाणा पत्रिका। अंत में मनोज छाबड़ा की दो लाइनों से अपनी बात समाप्त कर रहा हूं।

तंग दिलों की पीठ पर
जिजीविषा का बैठ जाना था
पिता का दादी की गोद में सुरक्षित होना।

पत्रिका दिन दुगनी रात चौगुनी उन्नति करे, इसी मनोकामना के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हूं।

दयाल चंद 'जास्ट' *मो-9466220146*

अपने शहर में देसहरियाणा प्राप्त करने का सम्पर्क

शहर	नाम	फोन
कुरुक्षेत्र	सुभाष सैनी	9416482156
सोनीपत	इकबाल सिंह	9992606227
यमुनानगर	ब्रह्मदत्त शर्मा	9416955476
	बी मदन मोहन	9416226930
अम्बाला शहर	जयपाल	9466610508
अम्बाला कैंट	धर्मवीर	9253681039
करनाल	अरुण कैहरबा	9466220145
	दुलीचंद	9468409948
कैथल	प्रेमचंद	9729883662
	रामफल दयोरा	9466544638
घरौंडा	राधेश्याम भारतीय	9315382236
सफीदों	बहादुर सिंह 'अदिल'	9416855973
पंचकूला	सुरेन्द्रपाल सिंह	9872890401
	जगदीश चंद्र	9316120057
जींद	शमशेर सिंह	9416190562
महेन्द्रगढ़	अमित मनोज	9416907290
फतेहाबाद	पवन सागर	9996040307
रोहतक	अविनाश सैनी	9416233992
	अमन वशिष्ठ	9729482329
पानीपत	दीपचंद निर्मोही	9813632105
सिरसा	परमानंद शास्त्री	9416921622
टोहाना	बलवान सिंह	9466480812
हिसार	डा. महावीर शर्मा	9253240576
नरवाना	सुरेश	9416232339

शर्मिला की कविताएं

आखिरी कश

चेहरे बदले
हम वहीं हैं
एड़ियाँ सदियों से
मुँह खोले
सिसक रही हैं
हथेलियों में
टिब्बें उग आए हैं
मुट्ठी में चार दाने
धुजते हाथ
जला देते हैं
बीड़ी का आखिरी कश
छूट जाता है । (धुजना - कांपना)

दर्द

तुम कहती हो
बारिश में
खिड़कियाँ खुली रहने से
नींद बहुत अच्छी आती है
दूसरी तरफ
एक आदमी
हुक्के पर गिरा हुआ
बूँदों के साथ
चिंताओं के घूँट भरता है
बंद दीवारों के बीच
उसे खड़े दानों का
कड़क कर बादलों में
समा जाती बिजली का
चेहरा दिखता है
और ये दर्द लेकर
नसों में पैठ जाता है
उसकी आँख नहीं झपकती ।

हमने जहर नहीं बोया

नाड़ लटकाये
डोळी पर
मिट्टी में मिट्टी हुए
घुटनों पर हाथ रखे
तुम बैठे थे
कितने बैठे हैं
डबडबाई आँखों में
दो नहीं ...
सहस्र पुतलियाँ थर्राई
हमने जहर नहीं बोया
कौन लाया है ?
कौन ?
किसने हमें...
सौदागर बनाया है ? (नाड़-गर्दन, डोळी-मेड़)

निकम्मा

देखते-देखते धड़कनें
गले तक उछल आती हैं
हाथों से चीजें कांपकर
छूटने लगती हैं...
और जंगलो में टँगी आँखें
घूर कर देखती हैं
जैसे कत्ल हो गया हो
हड़बड़ाहट में साँसें...तिनकों की तरह
तितर-बितर होने लगती हैं
और सबकुछ समेट कर
निकल जाना चाहती हैं
जैसे कोई पकड़ न ले
प्रेम में आदमी
सिरे का निकम्मा हो जाता है।
इसलिए ज्यादा समझदार लोग
फैसले लेते हैं...
प्रेम नहीं करते !

(जंगला-खिड़की आदि की वह चौखट जिसमें लोहे की छड़ लगी होती है।)

शोधार्थी, पी.यू., चण्डीगढ़ -7837723246